शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : **जगजीवन बाउचंद दोशी** (सावरकुंडला) 卐

जून : १९६४ ☆ वर्ष २० वाँ, बैसाख, वीर नि०सं० २४९० ☆ अंक : १

पोन्नूर यात्रा तथा जन्म जयन्ती विशेषांक

भक्ति भीगे हृदय से पोन्नूर में श्री कानजीस्वामी द्वारा परमगुरु
श्री कुन्दकुन्द स्वामी के चरण स्पर्श

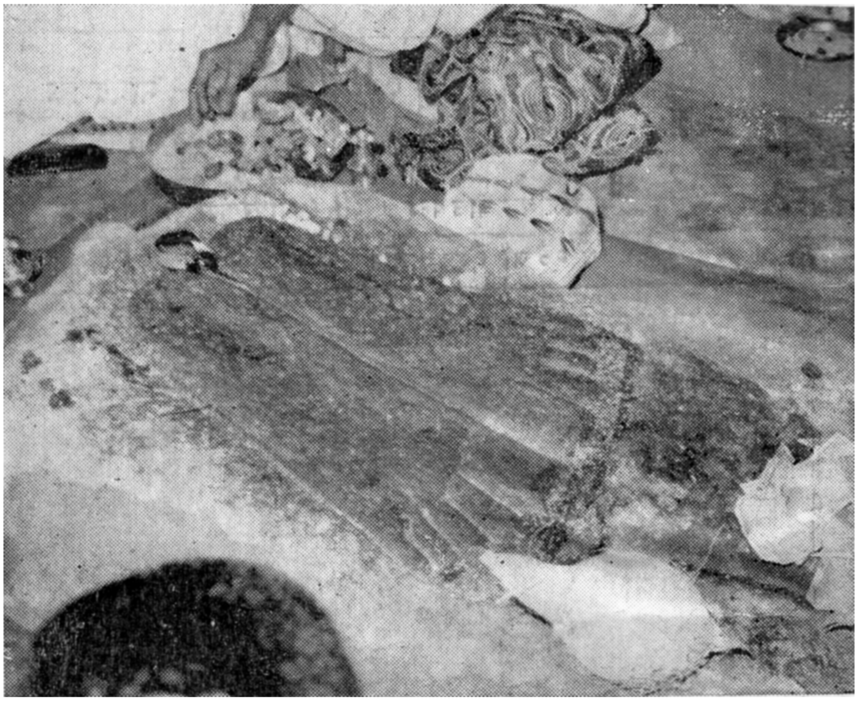

पोन्नूर तारीख २७-१-६४

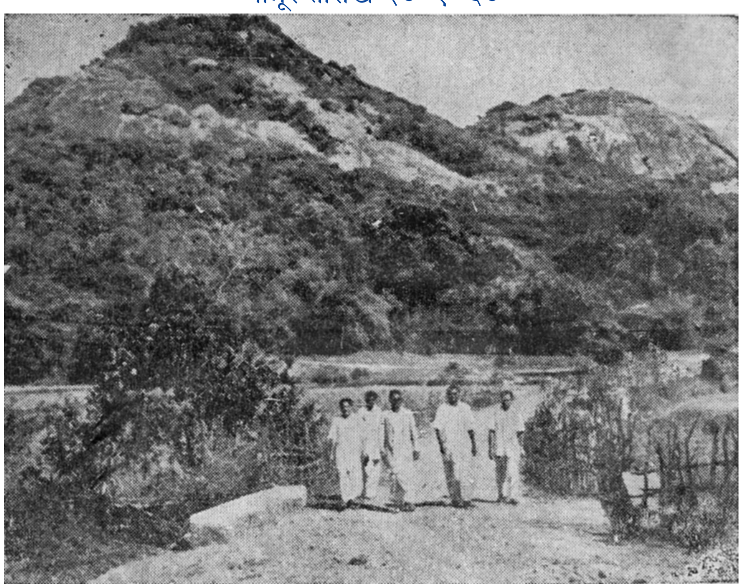

श्री कुन्दकुन्दाचार्य का समाधिक्षेत्र व तपोभूमि कुन्दाद्रि
ठि० हुमचा (S.K.) तीर्थहली और आगमबे के बीच में
['सन्मति कार्यालय' बाहुबली आश्रम के सौजन्य से]

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जून : १९६४ ☆ वर्ष २० वाँ, बैसाख, वीर नि०सं० २४९० ☆ अंक : १

दक्षिण भारत के
तीर्थधामों की यात्रा

पिछले दिनों पूज्य कानजी स्वामी ने यात्रा संघ सहित अपूर्व उल्लास और अतिशय भक्तिभावपूर्वक दक्षिण भारत के चार मुख्य तीर्थस्थानों—कुन्दाद्रि, मूडबिद्री, श्रवणबेलगोला और पोन्नूर—की यात्रा की थी। अंति दिन पोन्नूरधाम में सात मोटर बसों तथा सत्तर मोटर कारों के साथ करीब एक हजार यात्री थे। पोन्नूर और आसपास के नगरों से करीब पाँच हजार लोग एकत्रित हुए थे। पूज्य स्वामीजी ने श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पावन चरणों का अभिषेक और पूजा अति भक्तिपूर्वक करायी थी। पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि—'अहा! उस समय के भावों का क्या करें! जो वहाँ उपस्थित थे, वे ही अनुभव कर सकते हैं!! यहाँ हम उस यात्रा के कुछ संस्मरण (संक्षेप में) दे रहे हैं।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

बेलगाँव से चलकर पूज्य स्वामीजी तारीख १४-१-६४ को हुबली पधारे और हार्दिक स्वागत हुआ। पाँच वर्ष पूर्व स्वामीजी हुबली आये थे; उस समय स्वागत-यात्रा में जो दो हाथी के बच्चे थे, वे ही इस बार भी थे। हुबली में कुछ जिनमंदिरों के दर्शन किये। दूसरे दिन दावनगीर (दक्षिण भारत में जिस दावनगेरे कहते हैं) आये; वहाँ सुंदर व्यवस्था थी। वहाँ से चलकर यात्रासंघ रात्रि को १२ बजे हुमचा पहुँच गया। लम्बी यात्रा में तीर्थों की और संतों की खूब भक्ति होती थी... कुन्दकुन्द प्रभु की भक्ति का तो कहना ही क्या था? एक बार 'कुन्दकुन्द प्रभु केवा हशे..' की आश्चर्यकारी धुन लगातार एक घंटे तक चलती रही। दूसरे दिन पूज्य स्वामीजी हूमच

पधारे और वहाँ के प्राचीन जिनमंदिरों के दर्शन किये। पहाड़ी पर एक पुराना मंदिर है, वहाँ भी यात्रीगण दर्शन-भक्ति करने के लिये गये थे। वहाँ दोपहर के प्रवचन में स्वामीजी ने सीमंधर भगवान तथा श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का अति-सन्मानपूर्वक स्मरण करके अलौकिक बातें कही थीं, जिसे सुनकर श्रोताजन अत्यंत हर्षित हो रहे थे। तारीख १७-१-६४ हुमचा से कुन्दकुन्द प्रभु की भक्ति करते हुए यात्री कुन्दाद्रि आये और यात्रा करने की धुन में मोटर बसें पहाड़ पर लगभग आधी ऊँचाई तक चढ़ती चली गईं। कुन्दाद्रि पर्वत घनी झाड़ियों से आच्छादित है और मोटरें ऊपर तक जाने के लिये मार्ग तैयार हो गये हैं। दस वर्ष पहले तो इस पहाड़ पर पैदल चढ़ना भी कठिन था। कोई मोटरों द्वारा तो कोई पैदल चलकर कुन्दकुन्द प्रभु के पावनधाम में पहुँच गये। ऊपर के मनोहर उपशांत वातावरण में, पाप विध्वंसक तालाब के किनारे जो प्राचीन मंदिर-मानस्तम्भ है, उसी के निकट-कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के प्राचीन चरणकमल उत्कीर्ण हैं। शिलालेख भी है। उन चरणपादुकाओं के पास ही एक पक्का मंडप बनाया गया है। स्वामीजी ने भक्तिभावपूर्वक कुन्दकुन्द प्रभु के चरणों को नमन और स्पर्श किया; अभिषेक भी किया, बाद पूजन प्रारम्भ हुई। णमोकार मंत्र और कुन्दकुन्ददेवाय नमः कहकर स्वामीजी ने पूजन का प्रारम्भ किया। पूजा के बाद अति उल्लासपूर्ण भक्ति हुई। पूज्य स्वामीजी ने निम्नोक्त आशय युक्त स्तवन बुलवाया था—

आज महा मंगलकारी सूर्योदय हुआ।
भव्यजनों के हर्षानंद का पार नहीं है।
श्री कुन्दकुन्द प्रभु शासन शिरोमणि हुए हैं...
वे जिनेश्वर देव के दर्शनों से पावन हुए...
उनकी आत्मशक्ति की क्या बात कहें?
उनके चरणों में हमारा मस्तक झुक जाता है।

पूज्य स्वामीजी अत्यंत भक्तिभाव से उपरोक्त आशयवान स्तवन गवा रहे थे। भक्ति के पश्चात् इस यात्रा की आनंदकारी स्मृति में हस्ताक्षर करते हुए स्वामीजी ने लिखा कि—**कुन्दनगिरि को पावन करनेवाले कुन्दकुन्ददेव को नमस्कार हो।** फिर पर्वत के प्राचीन मंदिर में—जहाँ कुन्दकुन्दस्वामी दर्शन करते थे—दर्शन किये और इस यात्रा की स्मृति में करीब छह हजार का चंदा हुआ। तत्पश्चात् मंदिर के सामनेवाले प्रांगण में मुनिभक्ति हुई। जिसमें पूज्य बेनश्री बेन ने कुन्दकुन्द प्रभु की लगन का भावपूर्ण स्तवन गवाकर अद्भुत भक्ति करायी थी। वह स्तवन भी इसी

अंक में अन्यत्र दिया गया है।—इसप्रकार आनंदपूर्वक पूज्य स्वामीजी के साथ कुन्दाद्रिधाम की यात्रा करके उल्लास भरी भक्ति गाते-गाते सब नीचे उतरे.. पर्वत की तलहटी में सबने जल-पान किया.. दोपहर को पूज्य स्वामीजी ने बीस मिनट तक प्रवचन किया और ...तत्पश्चात् वहाँ से प्रस्थान करके घनी झाड़ियों के मार्ग को पार करते हुए आनंदकारी भक्ति के साथ तीर्थंकरों-संतों एवं तीर्थधामों का स्मरण करते-करते रात्रि को मूडबिद्री आ पहुँचे थे।

मूडबिद्री में यात्रा संघ दो दिन तक रुका था। माघ शुक्ला चौथ के दिन वहाँ के सुप्रसिद्ध जिनालय—त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि में सामूहिक पूजन हुई तथा रत्नमय जिनबिम्बों के दर्शन किये। मूडबिद्री ग्राम के समाज मंदिर में गुरुदेव का स्वागत-समारोह हुआ था। रात्रि को जिनेन्द्रों की भक्ति हुई थी। दूसरे दिन प्रात:काल पूजन के बाद मूडबिद्री के अनेक जिनमंदिरों के दर्शन किये थे। वहाँ करीब अठारह जिनालय हैं। बहुत से यात्री श्री बाहुबलि आदि भगवान के दर्शनार्थ कारकल भी गये थे। दोपहर को रत्नप्रतिमा-दर्शन के बाद प्रवचन हुआ और ताड़पत्र पर लिखे हुए शास्त्रों (जय-धवला आदि) का अवलोकन व दर्शन किया। रात्रि को त्रिभुवनतिलक चूडामणि जिनालय में दीपमाला-दर्शन हुआ। हजारों दीपकों के प्रकाश से जगमगाते हुए मंदिर में जिनेन्द्रदर्शन का दृश्य अति सुंदर लग रहा था। उस समय भक्ति में कानडी भाषा के भजन भी हुए थे।—इसप्रकार मूडबिद्री का द्विदिवसीय कार्यक्रम समाप्त हुआ था। दूसरे दिन प्रात:काल श्रवणबेलगोला की ओर जाते हुए बीच में वेणरु स्थित ३७ फुट उत्तंग श्री बाहुबलि भगवान के तथा जिनमंदिरों के दर्शन किये।

प्राचीन जैनधर्म का वैभव बतलानेवाले दृश्य बड़े मनोहर थे।

मूडबिद्री से श्रवणबेलगोला की ओर जाते हुए बीच में साढ़े चार हजार फुट ऊँचा और सोलह मील लम्बा चार मेडी घाट पार करके मोटरें नीचे उतर आईं। मार्ग के एक ओर हजारों फुट गहरी घाटियाँ और दूसरी ओर ऊँची पहाड़ियाँ, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की घटाएँ, कहीं-कहीं सुंदर झरने और टेढ़े-मेढ़े रास्ते—ऐसे उस घाट के दृश्य हृदयग्राही हैं। प्रात: ६ बजे चलकर सायंकाल पाँच बजे श्रवणबेलगोला पहुँचे। मार्ग में बेल्लूर का मठ और हलेबिड़ (द्वारा समुद्र) के प्राचीन जिनमंदिर देखे। करीब पन्द्रह मील दूर से यात्रियों को श्रवणबेलगोला के पर्वत पर खड़े हुए बाहुबलि भगवान के शिरोभाग के दर्शन होते हैं। रात्रि को जिनमंदिर में चौबीस तीर्थंकर भगवान के सम्मुख भक्ति हुई थी।

माघ शुक्ला सप्तमी के प्रात:काल पूज्य स्वामीजी के साथ यात्री वन्दना के लिये इन्द्रगिरि पर्वत की ओर चलने लगे और पन्द्रह–बीस मिनट में ही पर्वत पर पहुँचकर जहाँ बाहुबलि नाथ को निहारा कि सब हर्षानंद से स्तब्ध बन गये.. उस मनोहर वीतरागी प्रतिमाजी के दर्शनों से शांति एवं हर्ष की इतनी ऊर्मियाँ जागृत होती हैं कि क्षण भर तो वाणी उन्हें व्यक्त नहीं कर सकती। गुरुदेव भी स्तब्ध नयनों से पुन: पुन: उस पावन मुद्रा को देख रहे थे। पश्चात् बाहुबलि भगवान की दो पूजाएँ हुईं और प्रथम स्वामीजी ने तथा बाद में बेनश्री बेन ने भक्ति करायी। इसप्रकार आनंद सहित यात्रा करके नौ बजे नीचे उतरे और वहाँ की जनता ने उमंगसहित गुरुदेव को नगर में घुमाकर स्वागत किया। स्वागत पूरा होने पर कन्नड़ बालिकाओं ने दीपकों और पुष्पों आदि से स्वामीजी का सम्मान किया तथा कन्नड़ भाषा में स्वागत–गान गाया। पाँच वर्ष पूर्व की यात्रा के समय बाहुबलि भगवान के अभिषेक की बोलियों में जो साढ़े दस हजार रुपये एकत्रित हुए थे, उनसे यहाँ चार कमरों का एक मकान—'श्री कानजी स्वामी यात्रिकाश्रम' बनवाया गया है, उसी में स्वामीजी का विश्राम स्थान था। स्वामीजी के आने पर ही उसका उद्घाटन हुआ था। दोपहर के प्रवचन में स्वामीजी ने बाहुबलि भगवान की जीवनदशा का अद्भुत भावपूर्ण वर्णन किया था। प्रवचन के पश्चात् अभिषेक की बोलियों में कुल सोलह हजार रुपये की आय हुई थी। रात्रि को पुन: पर्वत पर जाकर सबने सर्च लाइट के प्रकाश में बाहुबलिनाथ की पावनमुद्रा के दर्शन किये... अहा! पुन: पुन: दर्शन करते हुए नये–नये भाव जागृत होते हैं। स्वामीजी के हर्ष का तो पार नहीं था। बाहुबलिस्वामी की ओर एकटक देखते हुए गुरुदेव ने भावविभोर होकर प्रसन्नता से कहा—वाह! इनका मुखारबिन्द तो देखो, कैसे अलौकिक भाव झलक रहे हैं! पुण्य का अतिशय और अलौकिक पवित्रता—दोनों दिखायी दे रहे हैं। ज्ञान अंतरंग में ऐसा लीन हुआ है कि—बाहर आने का अवकाश ही नहीं! ज्ञान वीतरागभाव में लीन हो गया है। मुख पर अनंत आश्चर्यकारी वीतरागता है... मानों चैतन्य की शीतलता का पिण्ड!! आज दुनिया में इसकी समानता नहीं है।

—ऐसे तो अनेकों उद्गार गुरुदेव ने व्यक्त किये... बाहुबलि भगवान के दर्शन की ऊर्मियाँ वाणी में किसप्रकार व्यक्त की जायें... यह मानों सूझ ही नहीं रहा था... वहाँ भगवान बाहुबलि की अत्यंत भक्ति हुई। पूज्य बेनश्री बेन ने भी अभूतपूर्व उमंग से भक्तिरस प्रवाहित किया। स्वामीजी के साथ यह अद्भुत तीर्थयात्रा में पुन: पुन: भगवान बाहुबलि के दर्शन करते हुए उन्हें और समस्त यात्रियों को अपार हर्षोल्लास हो रहा था। बाहुबलि–दर्शन में स्वामीजी का आज का आनंद कुछ

अद्‌भुत ही था। इसप्रकार अत्यधिक आनंदपूर्वक बाहुबलि भगवान को निहारकर तथा भक्ति करके द्वितीय यात्रा पूर्ण की और नीचे उतरे।

दूसरे दिन प्रात:काल पुन: भगवान बाहुबलि के दर्शन करने तथा उनके चरणों का अभिषेक करने के लिये सभी यात्री स्वामीजी के साथ पर्वत पर पहुँचे। पूजन के बाद अतिशय भक्तिपूर्वक चरणाभिषेक हुआ। पहला कलश श्री भाई खेमचंद जेठालाल सेठ ने लिया। स्वामीजी ने स्वर्णकलश द्वारा अभिषेक प्रारम्भ किया, तब यात्री हर्षातिरेक से नाच उठे! अभिषेक के बाद स्वामीजी ने भक्ति करायी—जिसमें 'जंगल वसाव्युं रे योगी ने....' यह गीत वैराग्यभावना पूर्वक गवाया था। पश्चात्‌ 'विंध्यगिरि पर बाहुबलिनाथजी भले विराजे जी...' इत्यादि स्तवनों द्वारा बेनश्री बेन ने भी भक्ति करायी थी। आज की आनंदकारी यात्रा की स्मृति में हस्ताक्षर करते हुए बाहुबलिस्वामी के सम्मुख बैठे हुए स्वामीजी ने लिख दिया था कि—'श्री बाहुबलि भगवान की जय हो... आनंदामृत की जय हो...' इसप्रकार पुन: पुन: भगवान बाहुबलि को निरखकर, अभिसिंचित कर, एवं स्पर्श कर यात्रा पूर्ण करके मंगल-गीत गाते हुए सब नीचे आये। अनेक यात्री सामनेवाली पहाड़ी—चंद्रगिरि पर यात्रा करने गये। वहाँ अनेक प्राचीन मंदिर देखे तथा कुन्दकुन्दाचार्यादि संबंधी शिलालेखों का अवलोकन किया। भद्रबाहुस्वामी की गुफा में उनके सवाफुट लम्बे चरणों के दर्शन किये और प्रत्येक स्थान पर दर्शन-पूजन एवं भक्ति की। दोपहर में भट्टारकजी के मंदिर में जिनबिम्ब के दर्शन किये और भगवान बाहुबलि के जीवन-चित्र देखे। स्वामीजी ने अपने प्रवचन में भगवान बाहुबलि की महिमा का बहुविध वर्णन किया। सायंकाल छह बजे यात्रा संघ ने मैसूर की ओर प्रस्थान किया।

(माघ शुक्ला ९, तारीख २३) प्रात:काल स्वामीजी मैसूर पधारे और वहाँ की मेयर (नगरपति) बहिन की अध्यक्षता में भव्य स्वागत हुआ, शहर को खास शोभायमान किया। स्थानीय अग्रगण्य नागरिक, सैकड़ों यात्री, पच्चीस मोटरों और सात बस के साथ स्वागत-जुलूस सुशोभित हो रहा था। टाउन हॉल में मंगलाचरण के बाद स्वागताध्यक्ष का भाषण हुआ और एक भाई ने कन्नड़ भाषा में स्वामीजी का जीवन-परिचय दिया। मध्याह्न में स्वामीजी ने प्रवचन किया जिसका अनुवाद कन्नड़ भाषा में भी उसी समय होता जा रहा था। दूसरे दिन प्रात:काल मैसूर से बंगलोर आये। मार्ग में अद्‌भुतभक्ति होती रही। बंगलोर में दोपहर के प्रवचन के पश्चात्‌ समाज की ओर से अभिनंदनपत्र अर्पित किया गया, साथ में चंदन की पेटिका थी उस पर भगवान श्री बाहुबलि

का सुंदर चित्र उत्कीर्ण है। बंगलोर से रानीपेठ होकर बाँदेवास आये। कुन्दकुन्दप्रभु के धाम में जाते हुए अचिंत्य भक्ति उमड़ रही थी।

बाँदेवास पोन्नूर पर्वत के निकट एक बड़ा ग्राम है। वहाँ के जिनालय में श्री सीमंधर भगवान की खड्गासन प्रतिमा के दर्शनों से बहुत आनंद हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल (२६ जनवरी १९६४, माघ शुक्ला १२-१३) पोन्नूर की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। बाँदेवास से करीब पाँच मील दूर पोन्नूर पर्वत (पोन्नूर मलय) स्थित है। आनंदपूर्वक भगवान कुन्दकुन्द का स्तुतिगान करते हुए स्वामीजी के साथ दस मिनट में पर्वत पर पहुँच गये। अहो! कुन्दकुन्दप्रभु ने जहाँ से श्रुतगंगा प्रवाहित की और विदेह-यात्रा की, ऐसे उस पावन धाम की रमणीयता कुछ अद्भुत ही है। चम्पावृक्ष के नीचे एक श्यामशिला पर कुन्दकुन्द प्रभु की लगभग दो फुट लम्बी चरणपादुका उत्कीर्ण हैं। जिस पर एक गुमटी और सामने विशाल मंडप अभी नया बना हुआ है। स्वामीजी ने अतिशय भक्तिभाव से उन परमगुरु के पावन चरणों में नमन किया तथा भावपूर्वक स्पर्श किया और फिर पूजा हुई। आसपास के अनेक ग्रामों में जैनों की अच्छी संख्या है, जो इस अवसर पर उपस्थित थे। पर्वत पर करीब पाँच हजार यात्रियों का विशाल समुदाय एकत्रित हुआ था और यात्रासंघ द्वारा कुन्दकुन्द भगवान की भक्ति देखकर वह सब हर्षित हो रहा था। पूजन के बाद स्वामीजी ने श्री कुन्दकुन्द भगवान की भक्ति गवायी थी—'मन लगा रे कुन्दकुन्ददेव में...' स्तवन गाते हुए स्वामीजी आनंद विभोर हो रहे थे। पश्चात् पूज्य बेनश्री बेन ने विविध स्तवनों द्वारा अनुपम भक्ति करायी थी। उनके एक स्तवन का सार इसप्रकार था—

भक्त पोन्नूरगिरि से प्रश्न करता है कि—'हे पर्वत! हमारे कुन्दकुन्द प्रभु कैसे थे? उनका संदेश तू हमें सुना!' और पर्वत मानों उत्तर देता है—इत्यादि अनेक रचनायुक्त भक्ति हुई थी। जय-जयकार के नाद से वातावरण गूँज रहा था। पर्वत की शिलाएँ और वृक्ष भी यात्रियों से भर गये थे।—इसप्रकार गुरुदेव के साथ अत्यंत आनंद प्रमोद सहित कुन्दकुन्द प्रभु के पोन्नूर धाम की यात्रा की।

यात्रा करके नीचे तलहटी में आते ही हजारों भक्तों सहित स्वामीजी का स्वागत किया। तलहटी में मानों विशाल मेला लगा था। पोन्नूर पर्वत से करीब तीन मील दूर पोन्नूर ग्राम है; वहाँ के दो जिनमंदिरों के दर्शन किये। कहते हैं कि कुन्दकुन्दस्वामी उन्हीं मंदिरों में दर्शन करने पधारते थे। तदुपरांत बाँदेवास के निकट 'सप्तमंगलम्' में भी जिनमंदिर के दर्शन किये थे। पोन्नूर के सामने पास ही धवलगिरि नामक पर्वत है। कहते हैं कि श्री वीरसेनस्वामी ने धवला-टीका की रचना इसी

धवलगिरि पर्वत पर की थी। यह सुनकर स्वामीजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। दोपहर का प्रवचन बांदेवास–हाईस्कूल के प्रांगण में था। उसमें स्वामीजी हिन्दी में बोल रहे थे और बीच में पन्द्रह–पन्द्रह मिनट के बाद उसका तामिल में अनुवाद एक दुभाषिये द्वारा किया जा रहा था। प्रवचन में तीन–चार हजार स्त्री–पुरुषों के बीच स्वामीजी ने श्री कुन्दकुन्द प्रभु की महिमा का वर्णन किया था कि—'अहो! उन्होंने तो सीमंधर भगवान के साक्षात् दर्शन करके इस भरतक्षेत्र में—इसी स्थान से—श्रुत की प्रतिष्ठा की है।' प्रवचन के बाद दूसरे दिन पोन्नूर पर कुन्दकुन्द प्रभु के चरणाभिषेक का कार्यक्रम घोषित हुआ और उसकी बोलियों में करीब तीस हजार रुपये एकत्रित हुए थे।

दूसरे दिन (माघ शुक्ला १४) प्रातःकाल पुनः पोन्नूरधाम की यात्रा के लिये चले.. अहा! मानों कुन्दकुन्द प्रभु साक्षात् दर्शन देने पधारे हों और भक्त उनके दर्शन करने जा रहे हों—ऐसा आज यात्रियों का उत्साह था। दर्शनादि के पश्चात् अभिषेक विधि का प्रारम्भ करते हुए स्वामीजी ने कहा—'**देखो, सब शांति से सुनो.. आज यह श्री कुन्दकुन्द प्रभु का महाभिषेक हो रहा है। वे विदेहक्षेत्र में गये थे और सीमंधर भगवान की वाणी सुनकर यहाँ आकर शास्त्रों की रचना की थी। आज माघ शुक्ला चतुर्दशी है; आज का दिन अपूर्व है। यहाँ से वे आकाशगमन करके भगवान के पास गये थे, उनका हम सब पर महान उपकार है। उनका अभिषेक–पूजन हो रहा है।**—ऐसा कहकर स्वामीजी ने मंगल–पाठ के साथ पूजन प्रारम्भ की। आज की पूजा की यह विशेषता थी कि स्वामीजी अकेले ही पूजन–पाठ पढ़ रहे थे और सब यात्री भक्तिपूर्वक सुन रहे थे। जब स्वाहा मंत्र बोलते थे, तब हजारों यात्री एकसाथ अर्घ्य चढ़ाते थे। पूजन करते हुए स्वामीजी बीच–बीच में अनेक प्रकार से कुन्दकुन्द प्रभु की पोन्नूर की तथा यात्रा की महिमा का वर्णन करते जाते थे। उन्होंने कहा कि अपना निवास स्थान भी 'सोनगढ़' और इस पोन्नूर का अर्थ भी 'सुवर्ण का गढ़' होता है। जिसप्रकार सुवर्ण पर कभी काट (जंग) नहीं चढ़ती उसीप्रकार परमार्थ सिद्धांत में भी कभी फेरफार नहीं होता। अष्टविधि पूजन के पश्चात् जयमाल में एक कड़ी गुरुदेव और एक कड़ी भक्त बोलते थे। पूजन के पश्चात् अभिषेक–पाठ भी गुरुदेव ने पढ़ा था... और जब हाथ में सुवर्ण कलश लेकर स्वामीजी अपने परमगुरु का चरणाभिषेक करने के लिये खड़े हुए, तब हजारों भक्तों के हर्षोल्लास एवं जय–जयकार से पोन्नूर पर्वत गूँज उठा.. स्वामीजी ने अत्यंत भावपूर्वक अपने परमगुरु का पादप्रक्षालन किया। कानजीस्वामी द्वारा कुन्दकुन्द चरणों के अभिषेक का दृश्य लगभग दस हजार आँखें निहार रही थीं। अनेक यात्री तो खुशी से नाच उठे थे। अन्य सैकड़ों भक्तों ने भी अभिषेक किया। आज स्वामीजी के हृदय में कई अपूर्व भाव उल्लसित हो रहे थे। उनके

हृद्दय में भरे हुए कुन्दकुन्द महिमा के अचिंत्य भाव आज दिखायी दे रहे थे। अनेकानेक उद्गारों द्वारा उन्होंने वह अचिंत्य महिमा प्रगट की। 'हे कुन्दकुन्द शिवचारी तुमको लाखों प्रणाम' इत्यादि स्तवन गवाये थे। और आज की यात्रा तथा अभिषेक के महा आनन्द की स्मृतिरूप हस्ताक्षर करते हुए पोन्नूर पर बैठे-बैठे लिखा कि—'श्री सीमंधर भगवान के दर्शन करनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्द आचार्यादि नमोनम:।' पश्चात् पूज्य बेनश्री बेन ने भी अंतर की अपूर्व ऊर्मियों से भक्ति की थी; उन्हें भी आज पूज्य स्वामीजी के साथ तीर्थयात्रा का अचिंत्य उल्लास था। चरणों के निकट ही छोटी-छोटी गुफाएँ हैं, उनका भी सबने अवलोकन किया। पोन्नूर यात्रा के रंगीन चित्रों सहित 'आत्मधर्म' का 'कुन्दकुन्द अभिनंदन अंक' (गुजराती) यहीं पोन्नूर पर स्वामीजी को अर्पण किया और अनेक अभिनंदन-पत्र भी (तामिल आदि में) दिये गये.. इसप्रकार स्वामीजी के साथ महान उल्लासपूर्वक पोन्नूर धाम की यात्रा समाप्त हुई।

यात्रा करके नीचे उतरने पर हजारों तामिल बंधुओं ने स्वामीजी का सन्मान किया। दोपहर को प्रवचन भी अद्भुत था। प्रवचन के पश्चात् वहाँ के शास्त्रीजी ने स्वामीजी के स्वागत का भाषण दिया। उसमें उन्होंने कहा कि—पहले यहाँ हमारे पास एक चुम्बक था, और वह चुम्बक ही आज इन स्वामीजी को यहाँ खींच लाया है। वह चुम्बक थे श्री कुन्दकुन्द आचार्य! कहाँ सौराष्ट्र और कहाँ यह पोन्नूर! तथापि इन दोनों को एकसूत्र में पिरोनेवाला यह समयसार परमागम है।—आदि अनेक सुंदर उपमाएँ उन्होंने अपने भाषण में दी थीं। अनेक अभिनंदन-पत्र पढ़े जाने के पश्चात् विशाल जनसमुदाय ने स्वामीजी को नगर में घुमाकर तामिल जनता ने हार्दिक सम्मान किया था। ...मानों कुन्दकुन्द भगवान के यह प्रतिनिधि उनका संदेश लेकर आये हों—ऐसा उल्लास चारों ओर छाया हुआ था।

जय हो सीमंधर भक्त प्रभु कुन्दकुन्द की!
जय हो पोन्नूर के उस पवित्र संत की!
जय हो उस समयसार-दातार की!
जय हो कुन्दकुन्द प्रभु के भक्त श्री स्वामीजी की!
जय हो पावन तीर्थधाम पोन्नूर की!

यात्रा पूर्ण करके दूसरे दिन प्रात:काल (माघ शुक्ला १५) यात्रियों ने प्रस्थान किया। पोन्नूर छोड़ते हुए यात्रियों के हृदय पुलकित हो उठे थे। बहुत से यात्री वहाँ से मद्रास होकर सीधे बम्बई चले गये और शेष स्वामीजी के साथ ही रहे। स्वामीजी के यात्रासंघ ने पोन्नूर (बाँदेवास) से लौटते

हुए पहला मुकाम पालमनेर में किया और फिर टुम्कूर, चित्तलदुर्ग तथा धारवाड़ रुके। यात्रा अति आनंदकारी थी। मार्ग में बेनश्री बेन ने कुन्दकुन्द प्रभु की अपूर्व भक्ति करायी थी। धारवाड़ से निपानी की ओर जाते हुए बीच में उत्तर भारत के यात्रा संघ की दूसरी बसें मिल गईं और इसप्रकार मार्ग में अचानक साधर्मियों के मिलन से सब हर्षित हुए। निपानी से तीन मील दूर स्तवनिधि है, वहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन किये। वहाँ से कराड होते हुए पूना आये। पूना से नासिक, गजपंथा आये। वहाँ तारीख ४-२-६४ के दोपहर को मंदिर में भक्ति के समय स्वामीजी ने यात्रा के मधुर संस्मरण सुनाये। दूसरे दिन उत्साहपूर्वक गजपंथा सिद्धक्षेत्र की यात्रा की। स्वामीजी के साथ यात्रा करते हुए भक्तों को खूब आनंद आया। वहाँ से माँगीतुंगी सिद्धिधाम के दर्शन करते हुए जलगाँव आये और वहाँ यात्रासंघ समाप्त हुआ। स्वामीजी जलगाँव से बड़वानी, दाहोद, अहमदाबाद, सुरेन्द्रनगर होकर फाल्गुन कृष्णा ३० को राजकोट पधारे।

★

वास्तविक जीवन

आत्मा का वास्तविक जीवन क्या है, वह आचार्यदेव जीवत्वशक्ति के वर्णन में बतलाते हैं। बाह्य सुविधाओं में आराम से जीना या असुविधाओं में खेदखिन्न होकरर जीना, वह जीव का सच्चा जीवन ही नहीं है। अनंत शक्ति की सम्पदा से भरपूर ऐसे चैतन्यभाव में तन्मय होकर स्वाश्रितरूप से ज्ञान-आनंदमय जीवन जीना ही सच्चा जीवन है। श्री नेमिनाथ भगवान की स्तुति में कहा है कि—

तारूं जीवन खरूं, तारूं जीवन....
जीवी जाण्युं नेमनाथे जीवन...

द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों एकरूप चैतन्यमय भावप्राण को धारण करके स्थिर रहें, वह जीव का सच्चा जीवन है। भाई, तुझे सच्चा जीवन जीना है न! तो यह जान कि तेरे जीवन का कारण कौन है ? तेरे जीवन का प्राण कौन है—चैतन्यभाव ही तेरे जीवन का कारण है, चैतन्यभाव ही तेरा प्राण है। ऐसे चैतन्यभाव को धारण करनेवाली जीवत्वशक्ति की प्रतीति-पहिचान ही मोक्षतत्त्व प्रदान करनेवाली है। उस जीवन में आनंद और प्रभुता का भंडार भरा है।

(पहली शक्ति के प्रवचन से)

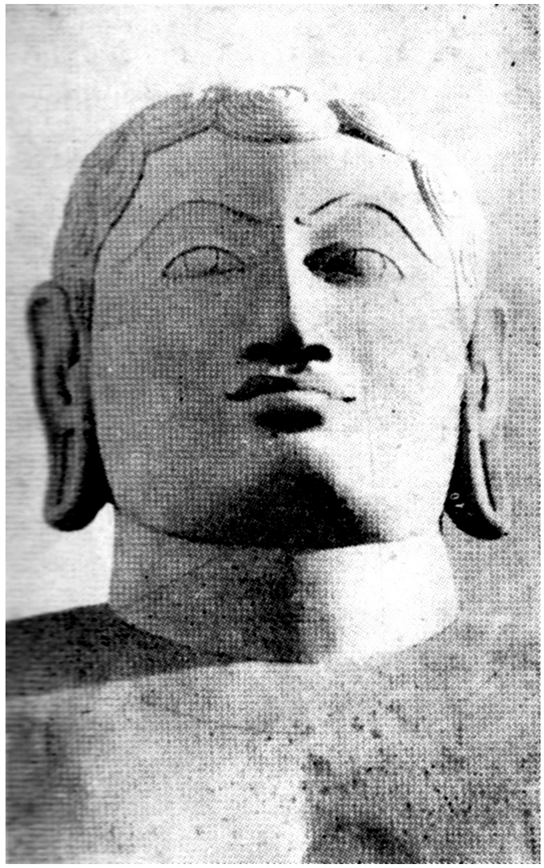

‘श्री बाहुबली भगवान की जय हो... आनंदामृत की जय हो’

भगवान श्री बाहुबली की यात्रा के हर्षोल्लास समय, बाहुबली भगवान के सन्मुख परम विनय से बैठे-बैठे श्री कानजी स्वामी ने उपरोक्त हस्ताक्षर लिख दिये थे उससे बाहुबली भगवान के दर्शन समय का उनका प्रमोद और उल्लास आपको समझ में आया होगा; दिन में और रात्रि को (सर्च लाइट के प्रकाश में) बार-बार श्री बाहुबली प्रभु के दर्शन करते बहुत बहुमान से स्वामीजी कहते थे कि वाह!! इनकी मुखमुद्रा पर तो देखो... कैसा अलौकिक निर्मलभाव प्रगट हो रहा है!! पुण्य का अतिशय और पवित्रता भी अलौकिक... दोनों दिख रहे हैं। ज्ञान अंतर में ऐसा लीन हुआ है कि बाहर आने का समय नहीं... वीतरागभाव में ज्ञान लीन हुआ है, अनंत गुणों से समृद्ध ऐश्वर्ययुक्त मुख के ऊपर अनंत आश्चर्यमय वीतरागता है... मानों चैतन्य की शीतलता का हिमालय... वर्तमान जगत् में यह अनुपम है।

पोन्नूर जिनमंदिर में........

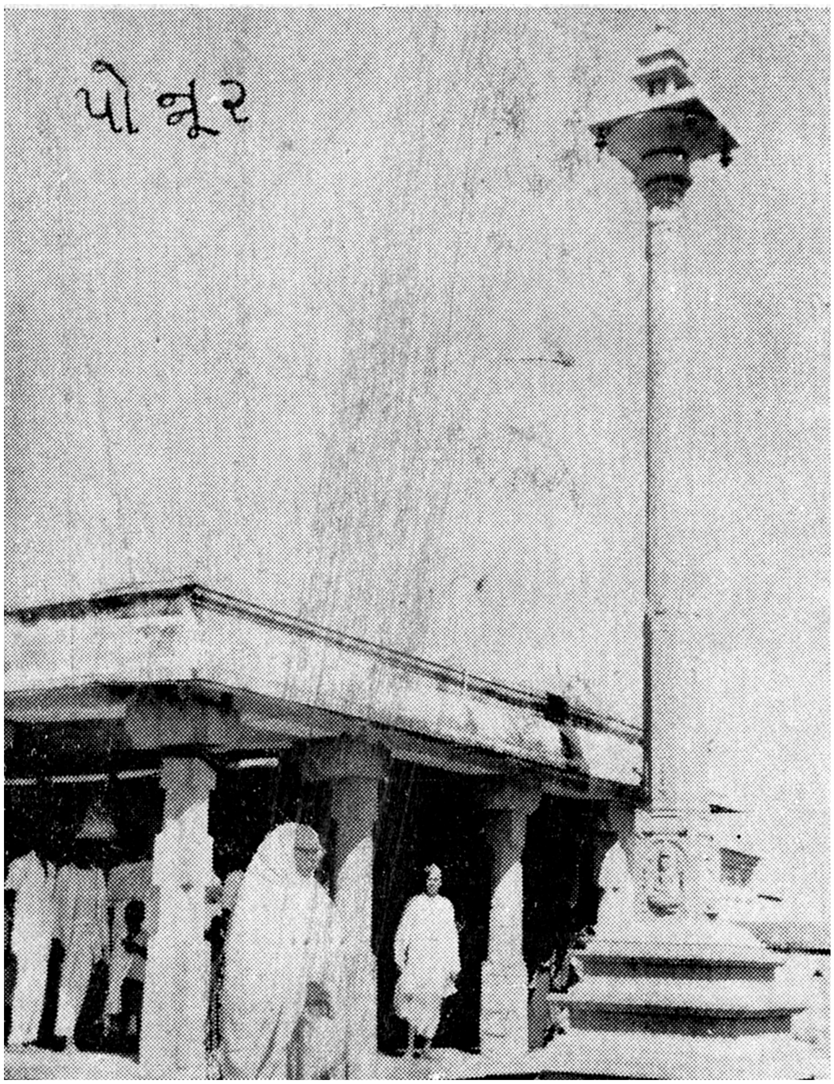

पोन्नूर पहाड़ से तीन मील दूरीपर (वंदेवास से पाँच मील पर) पोन्नूर गाँव है; वहाँ एक विशाल और अति प्राचीन जिनमंदिर है; श्री कुन्दकुन्दाचार्य जब यहाँ रहते थे, तब इस जिनालय में दर्शन करने पधारते थे...... यह बात सुनकर बहुत प्रमोदपूर्वक श्री कानजी स्वामी और यात्रीगण उस जिनमंदिर के दर्शन करने गये, उस समय की यादगार का एक दृश्य।

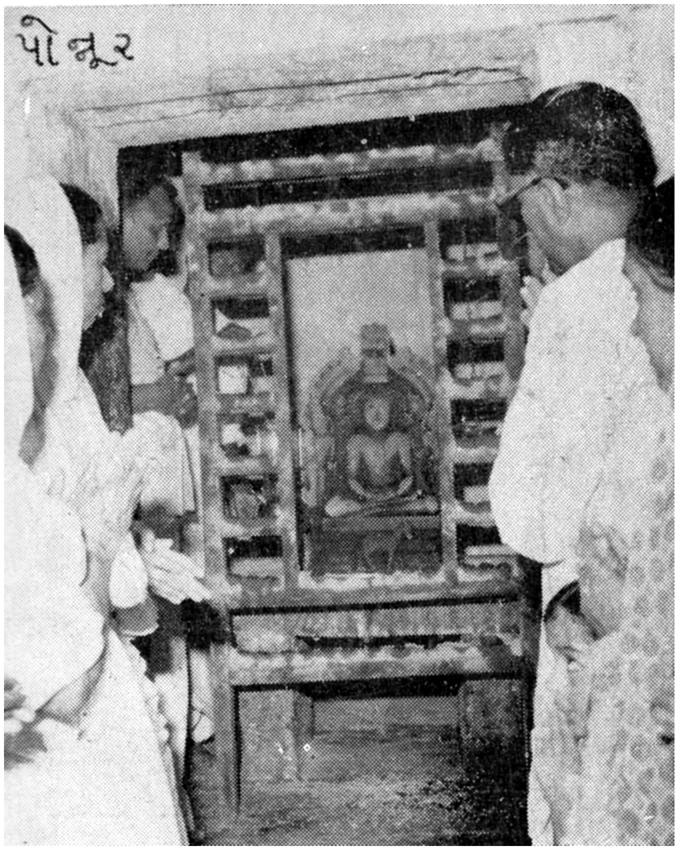

पोन्नूर जिनमंदिर में भक्तजन श्री संभवनाथ प्रभु क दर्शन कर रहे हैं।

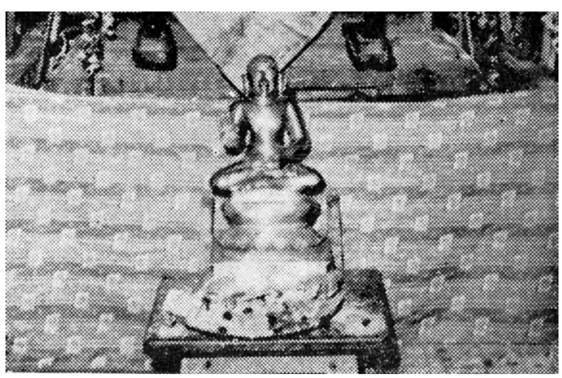

पोन्नूर जिनमंदिर में श्री गणधरदेव की मूर्ति

श्री कुन्दकुन्द प्रभु के चरणों का अत्यन्त भावपूर्वक
उनके भक्त अभिषेक कर रहे हैं।

★

[चित्र नं० ८–९ पोन्नूर में श्री कानजीस्वामी अष्ट द्रव्य सामग्री से पूजन कर रहे हैं, पूजन करा रहे हैं, वह ब्लॉक बहुत बड़ा होने से और बाहर गाँव भेजा हुआ होने से नहीं दे सके हैं, गुजराती अंक में दिया गया है।]

रत्नत्रय की आराधना

[मोक्षप्राभृत, गाथा ४७ से ५३ के प्रवचनों से]

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना, सो जिनमुद्रा है; वह वीतरागी जिनमुद्रा ही मोक्ष के कारणरूप है और वह स्वयं सिद्धिसुख है। मोक्षसुख के कारणरूप जो रत्नत्रयस्वरूप जिनमुद्रा उसी को मोक्षसुख कहा है। जिसप्रकार प्रवचनसार के पंचरत्न में भावलिंगी मुनि को ही मोक्षतत्त्व कहा है; उसीप्रकार यहाँ रत्नत्रय की आराधनारूप जिनमुद्रा वह मोक्षसुख का कारण होने से, उसी में कार्य का उपचार करके उसी को मोक्षसुख कहा है। जिनमुद्रा कैसी है ?—तो कहते हैं कि जैसी भगवान ने आराधी और कही है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधक, वीतरागता के पिण्ड मुनि चले आ रहे हों तो ऐसे लगता है मानों साक्षात् मोक्षतत्त्व आ रहा हो! अहा, ऐसी मुनिदशारूप जिनमुद्रा जिसे नहीं रुचती उसे आराधना का ही प्रेम नहीं है। ऐसी जिनमुद्राधारी मुनि के साक्षात् दर्शन होने पर मुमुक्षु जीव का हृदय आराधना के प्रति भक्ति से उछलने लगता है। अरे! स्वप्न में भी जिसे ऐसी मुनिदशा के प्रति अनादर या उसकी अरुचि हो वह जीव गहन भववन में भटकता है, क्योंकि उसे आराधना के प्रति तिरस्कार है। धर्मी को तो स्वप्न में भी वीतराग संत-धर्मात्मा का बहुमान आता है; स्वप्न में भी मुनि आदि धर्मात्माओं के दर्शन होने पर भक्ति से उसका रोम-रोम उल्लसित हो जाता है।

जहाँ सम्यग्दर्शन सहित चारित्रदशा होती है। वहाँ बाह्य में भी दिगम्बर द्रव्यलिंग होता है; इसप्रकार अंतर और बाह्य में वीतराग जिनमुद्रा धारण करनेवाले संत-मुनि स्वाधीन आत्मसुख का अनुभव करते हैं। आचार्यदेव स्वयं ऐसे स्वाधीन सुख का अनुभव करते हैं। ऐसी जिनमुद्राधारी धर्मात्मा मुनियों के दर्शन से जिसे प्रमोद और भक्ति नहीं आते वह जीव आराधना से भ्रष्ट वर्तता हुआ संसार में ही भटकता है। धर्मात्मा जीव तो ऐसे आराधक मुनि को देखते हुए प्रमुदित होता है कि वाह! धन्य है आपकी आराधना! धन्य है आपकी चारित्रदशा! धन्य है आपका अवतार! आप साक्षात् मोक्ष की साधना कर रहे हैं।—इसप्रकार धर्मी जीव प्रमोद सहित रत्नत्रय की आराधना की भावना को पुष्ट करता है।

रत्नत्रय के आराधक भावलिंगी मुनि इहलोक या परलोक दोनों के लोभ रहित निरपेक्षवृत्ति से अंतर में चिदानंद परमतत्त्व के ध्यान में मग्न होते हैं; वे वर्तमान में ही मोक्षसुख में रमते हैं और

अल्पकाल में ही पूर्ण मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे। जिसके अंतर में लोभ हो, लौकिक सुविधाओं की आकांक्षा हो, प्रतिकूलता का भय हो या परलोक संबंधी आकांक्षा हो, वह जीव परमात्मतत्त्व के ध्यान में नहीं रह सकता। अरे, मोक्षसुख की इच्छा भी लोभ है, वह भी दोष और आस्रव है और उतना लोभ भी मोक्षसुख को रोकनेवाला है। इसलिये भावलिंगी मुनिवर तो निर्लोभ होकर परमात्मतत्त्व को ध्याते हैं; उसमें परम आनन्दरस ही प्रवाहित होता है। निचली भूमिका में धर्मात्मा को किंचित् राग होता है किंतु उसे उस राग का लोभ नहीं है; यह राग अच्छा है—ऐसा लोभ नहीं है; इस राग के फल में इन्द्रपद की प्राप्ति होगी—ऐसा लोभ नहीं है; विदेहक्षेत्र में अवतार हो तो अच्छा—ऐसा भी लोभ नहीं है; क्योंकि उसने निर्लोभ ऐसे परमात्मतत्त्व को जान लिया है। सर्वप्रकार के लोभरहित होकर परमात्मतत्त्व के ध्यान में लीनता से मोक्ष होता है। मोक्षप्राप्ति का लोभ भी मोक्ष को रोकता है तो फिर अन्य लौकिक पदार्थों के राग के लोभ की तो बात ही क्या? अरे जीव! ऐसे वीतरागभावरूप आराधना वह मोक्ष का कारण है।

मुनिवरों की मति दृढ़ सम्यक्त्व द्वारा भावित है, इसलिये दर्शनशुद्धि की दृढ़तापूर्वक उनको ज्ञान की भी शुद्धता प्रगट हुई है।—ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञानसहित दृढ़चारित्र होता है। चाहे जैसे परिषह आयें, तथापि आत्मध्यान से नहीं डिगते—ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दृढ़ आराधना द्वारा आत्मा को ध्याते-ध्याते वे मोक्षपद को साधते हैं, परमात्मपद को प्राप्त करते हैं। ऐसे आराधक जीवों का स्वरूप बतलाकर आचार्यदेव भव्यजीवों को उस आराधना में युक्त करते हैं। आराधक जीवों का वर्णन सुनकर आराधना के प्रति उत्साह एवं भक्ति जागृत होती है। यह रत्नत्रय की आराधना, सो सर्व उपदेश के सारभूत है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करने को कहा, उसमें दर्शन और ज्ञान तो आत्मा की श्रद्धा-ज्ञानरूप हैं, किंतु चारित्र कहने से कोई बाह्य क्रियारूप चारित्र न समझे, उसके लिये आचार्यदेव चारित्र का स्वरूप स्पष्ट दर्शाते हुए कहते हैं कि चारित्र आत्मा का स्वधर्म है और वह आत्मा का स्वभाव ही है; राग-रोष रहित जीव के अनन्य परिणाम ही चारित्रधर्म है। उसमें परम साम्यभाव है, कहीं भी इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है। अहा, समस्त जीव ज्ञानमय सिद्ध-समान हैं, वस्तुदृष्टि से जीव और जिनवर में कोई अंतर नहीं है; जिनवर, सो जीव और जीव, सो जिनवर —ऐसी दृष्टि तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को भी होती है; तदुपरांत मुनि तो ध्यान में ऐसे लीन हुए हैं कि ६-७ वाँ गुणस्थान के योग्य वीतराग-परिणामरूप स्वधर्म प्रगट हुआ है, परिणति में

राग-द्वेष नहीं रहे—इसका नाम चारित्रधर्म है। चारित्र कोई बाह्य वस्तु या क्रिया नहीं है, वह तो जीव के अनन्य वीतराग परिणाम हैं, उसमें परमशांति-निराकुलता है। अहा, ऐसी चारित्रदशा में झूलते हुए संत मोक्ष को साधते हैं। परमात्मा हो या परमाणु हो, कोई वंदना करता हो या निंदा करता हो—सर्वत्र समभावपूर्वक, आत्मस्वरूप में एकाग्रता रहना, उसका नाम चारित्र है। देखो, यह जीव का स्वधर्म! जिसप्रकार ज्ञान, वह जीव का स्वधर्म है, उसीप्रकार ऐसा चारित्र भी जीव का स्वधर्म है, वह जीव से भिन्न नहीं है। जिसप्रकार ज्ञान-दर्शन आत्मा से पृथक् नहीं हैं, उसीप्रकार चारित्र भी आत्मा से पृथक् नहीं है। देह में चारित्र नहीं है, राग में भी चारित्र नहीं है। राग तो आत्मा से भिन्न परिणाम है, सिद्धदशा में वह राग निकल जाता है किंतु चारित्र तो रहता है। स्वरूप में स्थितिरूप वह चारित्र आत्मा का स्वाभाविक गुण है, वह सिद्धदशा में आत्मा के साथ अभेद रहता है।

आत्मा के स्वाभाविक परिणाम तो विशुद्ध हैं—वीतराग हैं, किंतु परद्रव्य के प्रति राग-द्वेष-मोह से उसके परिणामों में मलिनता होती है। जिसप्रकार स्फटिकमणि स्वभाव से तो उज्ज्वल-निर्मल है, उसमें अन्य फूल के संसर्ग से लाल, काले आदि रंगों की झलक दिखायवी देती है; उसीप्रकार जीवद्रव्य में स्वभाव से राग-द्वेष-मोह नहीं हैं, किंतु उसके परिणामस्वरूप से च्युत होकर परद्रव्य के साथ संबंध करके रागादिरूप होते हैं, वे रागादिभाव यथार्थत: उसके स्वधर्म नहीं हैं। परिणमन तो अपनी पर्याय में है, किंतु वह परिणाम स्वभाव के साथ अनन्यभूत नहीं है; इसलिये उसे स्वभाव से अन्यरूप जानकर तथा जीव के विशुद्ध चैतन्यस्वभाव को जानकर उसमें एकाग्रता से वीतरागी चारित्र प्रगट करना एवं रागादि दोषों को दूर करना चाहिये।—ऐसा उपदेश है।

रत्नत्रय के आराधक धर्मात्मा जब तक वीतराग न हुए हों और निर्विकल्प ध्यान में स्थिर न हों, तब तक ध्यान की परम प्रीतिपूर्वक उन्हें ध्यानकर्ताओं के प्रति भी विनय, बहुमान एवं वात्सल्य आता है। श्री अरिहंतदेव और सिद्धपरमात्मा के प्रति तथा गुरु के प्रति विनय बहुमान और भक्ति आती है एवं अपने समान अन्य साधर्मी धर्मात्माओं के प्रति अनुराग-अनुमोदना आती है। मुनियों को यह भाव होता है—ऐसा कहने से उसके अंतर्गत सम्यक्त्वी श्रावक-गृहस्थों की बात भी आ जाती है। देव-गुरु के प्रति, साधर्मी धर्मात्मा के प्रति जिसे विनय-भक्ति-अनुराग न हो, उसे तो धर्म की प्रीति ही नहीं है। जिसे धर्मात्मा की रुचि-प्रीति नहीं है, उसे धर्म की रुचि-प्रीति नहीं होती।

अहा, मुनियों और धर्मात्माओं का ध्येय तो चैतन्य ध्यान में स्थिर होकर पूर्ण वीतराग होना है; किंतु जब तक राग है, तब तक वीतरागता को प्राप्त देव और वीतरागता के उपासक ऐसे गुरु के

प्रति विनय-भक्ति-बहुमान आता है। स्वयं को ध्यान की रुचि है; इसलिये ध्यानवंत धर्मात्मा को देखकर उनके प्रति भी भक्तिभाव आता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसों को भी ऐसा देव-गुरु की भक्ति का भाव एवं साधर्मी के प्रति प्रमोद आता है। **अहा! जिनके निमित्त से आत्मा समझ में आया, उनके प्रति परम भक्ति आती है। सम्यग्दृष्टि को ही देव-गुरु के प्रति सच्ची भक्ति उल्लसित होती है, क्योंकि उसी को सच्ची प्रतीति सहित भक्ति है। मिथ्यादृष्टि तो राग का पथिक है, राग के मार्ग पर चलनेवाला है, उसे वीतराग परमात्मा की सच्ची भक्ति नहीं होती। और धर्मात्मा तो वीतरागता का पथिक है, इसलिये उसे वीतराग के प्रति सच्ची भक्ति होती है। बाह्य से कदाचित् ज्ञानी और अज्ञानी के भक्ति की समानता दिखाई दे, किंतु दोनों के अंतर में महान अंतर है; ज्ञानी के अंतर में वीतरागस्वभाव के सेवनपूर्वक की भक्ति है और अज्ञानी के अंतर में राग का ही सेवन है।**

ज्ञानी शिष्य ने जिनसे आत्मज्ञान प्राप्त किया, उन गुरु से कहता है कि—हे गुरु! आपके प्रताप से हमने भवसागर पार किया... अनंत भव-समुद्र से आपने हमें पार उतार दिया... आप न मिलते तो हम संसार में भटकते फिरते! आपने हमें परम कृपा करके पार उतार दिया। आपके चरणों के प्रसाद से ही हमें रत्नत्रय-आराधना की प्राप्ति हुई है। आपका हम पर महान उपकार है। यह बात श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने गोम्मटसार में कही है।

साधर्मी धर्मात्मा अथवा धर्म का सेवन करनेवाले समान साधर्मी के प्रति जिसे प्रेम उल्लसित न हो—अनुमोदना का भाव न आये, उसे धर्म की या ध्यान की रुचि ही नहीं है। जिसे धर्म की प्रीति हो, उसे सम्यग्दर्शनादि धारण करनेवालों के प्रति भी प्रेम होता है। धर्मी के बिना धर्म नहीं होता। ध्यान का दंभ करे और ध्यानवंत सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा के प्रति प्रेम-वात्सल्य-भक्ति न आये तो उसे ध्यान की अनुरक्ति नहीं है। अरे, हम तो देव-गुरु-धर्मात्मा के दासानुदास हैं—इसप्रकार जिसके विनय-बहुमान नहीं है, उसकी वृत्ति धर्म में नहीं है; उसकी वृत्ति कहीं बाह्य में भटकती है—ऐसा समझना चाहिये। जो देव-गुरु की भक्ति सहित है और संयमी-साधर्मियों के प्रति अनुरक्त है, वही सम्यक्त्व का उद्वहक है अर्थात् सम्यक्त्व की आराधना सहित है और वही ध्यान रक्त होता है। जिसे देव-गुरु के प्रति भक्ति या साधर्मी के प्रति अनुरक्ति नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन या ध्यान नहीं होता; उसका ध्यान तो कल्पना की तरंगें हैं।

ध्यान सम्यग्दृष्टि को ही होता है। सम्यग्दर्शनसहित ज्ञानी अंतर्मुहूर्तमात्र में जो कर्म खिपायेगा, वह अज्ञानी उग्र तप द्वारा भी नहीं खिपा सकता। अज्ञानी के उग्र तप की अपेक्षा

सम्यग्ज्ञान का सामर्थ्य महान है। ज्ञानी अंतर में चैतन्य पर दृष्टि लगाकर एक क्षण में अनंत कर्मों को खपा देगा। अज्ञानी घोर तप के कष्ट सहन करके अनेक भवों में जो कर्म खपायेगाव, वे कर्म ज्ञानी–धर्मात्मा चैतन्य की आराधना द्वारा क्षणमात्र में खपा देगा। ऐसा सम्यग्ज्ञान का परम सामर्थ्य है। इसलिये सम्यग्दर्शन–ज्ञानसहित चारित्र की आराधना का उपदेश है।

अध्यात्म पद

कविवर दौलतरामजी कृत

पद (७)

जीव तू अनादि ही तैं भूल्यौ शिव गैलवा। जीव० तू॥ टेक॥

मोहमद वारि पियौ स्वपद विसार दियौ पर अपनाय लियौ इन्द्रीय

सुख रचियौ, भवतैं न भियो न तजियो मन मैलवा ॥जीव० ॥१ ॥

मिथ्या ज्ञान आचरन, धरिकर कुमरन, तीन लोक की धरन, तामें

कियो है फिरन, पायो न शरन लहायो सुख शैलवा ॥जीव० ॥२ ॥

अब नर भव पायो, सुथल सुकुल आयो, जिन उपदेश भायौ,

दौलत झट छिटकायो, पर परनति दुख दायनी चुरैलवा ॥जीव० ॥३ ॥

तुमसे लगनी लागी मुनिवर...

[परमोपकारी पूज्य श्री कानजीस्वामी के साथ कुन्दकुन्द प्रभु के पावन समाधि धाम कुन्दाद्रि की यात्रा के समय माघ शुक्ला ३ के दिन कुन्दाद्रि पर्वत पर बेन श्री बेन ने जो भावभीना स्तवन गवाया था, उसका हिन्दी भावानुवाद]

तुमसे लगनी लागी मुनिवर... तुमसे लगनी लागी...
कुन्दकुन्द प्रभु की समाधि भूमि में तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
कुन्द प्रभु के चरणकमल से इस वन में उजियारा...
हुआ पवित्र उन्हीं के चरणों से कुन्दनगिरि न्यारा...
धरते ध्यान इसी धरती पर मुनिवर आतम ध्यानी...
मुनिवर आतमध्यानी प्रभुजी... तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
सीमंधर प्रभु के दर्शन को आप विदेह पधारे...
भेंट हुई प्रभु समवशरण में भक्तिभाव उर धारे...
भक्तिभाव उर धारे मुनिवर... तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
सुनी अपूर्व दिव्यध्वनि प्रभु की सार अलौकिक लाये...
शास्त्रों से भर दिया भव्यजीवों के मन हरषाये....
मुक्ति का मार्ग बताया मुनिवर... तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
असीम शक्तिधर आतमध्यानी चारण ऋद्धि धारी...
लब्धि प्रतिष्ठित आतमरामी ज्ञानी बहुश्रुत धारी...
ज्ञानी बहुश्रुतधारी मुनिवर.... तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
हुआ आपके ही चरणों में दक्षिण देश से पावन,...
कुन्दनगिरि भी हमें लग रहा है कितना मनभावन,...
है कितना मनभावन मुनिवर... तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
संतों के संग आज सु यात्रा, है कितनी सुखकारी....
तीर्थ भूमि को देख-देखकर हर्ष हो रहा भारी...
हर्ष हो रहा भारी मुनिवर... तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०
गुरुजी ने यह धाम दिखाया, धन-धन भाग्य हमारे,...
धन्य दिवस है आज, हमारे गुरुजी यहाँ पधारे...
गुरुजी यहाँ पधारे... मुनिवर तुमसे लगनी लागी... तुमसे लगनी०

मन लागा रे कुन्दकुन्ददेव में....

[पोन्नूर तीर्थधाम की अति उल्लासपूर्ण यात्रा के अवसर पर माघ शुक्ला १३ के दिन पूज्य स्वामीजी ने भावभीने चित्त से जो स्तवन गवाया था उसका हिन्दी भावानुवाद]

धन्य दिवस यह आज का, धन्य घड़ी महाराज
धन्य दिवस प्रभु हमारा, दर्शन पाये नाथ...
मन लागा हमारा मुनिवर में...
मन लागा रे कुन्दकुन्ददेव में...
दर्शन–ज्ञान–चरित्र से साधा साधक भाव,
चारित्रदशा आराधकर साधा चैतन्यराज... मन लागा...
सीमंधर प्रभु दर्श से, हर्षित हुआ समाज,
भव्यों पर करुणा करी, हमको किया सनाथ... मन लागा...
शास्त्र रचे प्रभु अनोखे, पूरे अद्‌भुत भाव,
चार संघ पर कृपा कर, खेई शासन नाव... मन लागा...
पर्वत पर पावन किया, पावन पोन्नूर ग्राम,
हम सब भी पावन हुए, कुन्दप्रभु के धाम... मन लागा...
धन्य भूमि धन्य धूलि यह, धन्य हमारा भाग्य,
संघसहित दर्शन किये, हुई सफल मम आस... मन लागा...

पारसमणि : आप समान बनाये

सत्पुरुष उपकार हेतु जो उपदेश करते हैं, उसे श्रवण करे और विचारे तो जीव के दोष अवश्य घट जायें। पारसमणि का संसर्ग होने पर यदि लोहे का सोना न बने तो जानना चाहिये कि पारसमणि सच्चा नहीं है या लोहा सच्चा नहीं है। उसीप्रकार जिसके उपदेश से आत्मा सुवर्णमय न हो, वह उपदेष्टा या तो सच्चा नहीं है अथवा सामनेवाला श्रोता योग्य नहीं है। योग्य श्रोता और सत्पुरुष उपदेष्टा हों तो गुण प्रगट हुए बिना नहीं रहते। (श्रीमद् राजचन्द्र, उपदेश छाया : ८)

वीतराग की वाणी आत्मा को जीवित करती है

वीतराग की वाणी सुनकर अंतर में बिजली जैसी कौंध जाती है और आत्मा जाग उठता है। भाई! चिदानंद प्राण को दृष्टि में झेलकर अपने चैतन्य को जीवित कर। अरे, विकार का कर्तृत्व मेरे चैतन्य में नहीं है; मेरा चैतन्य तो विकार का अकर्ता है—ऐसी वीतरागवाणी को आत्मा में झेलकर तू अपने चैतन्य को जीवित कर। अनादि से अज्ञान के कारण भावमरण को प्राप्त होता था, उसे वीतराग की वाणी ने जीवित कर दिया। वाह! देखो तो सही! वीतराग की वाणी आत्मा को जीवित करती है।

[राजकोट, फाल्गुन शुक्ला ३, समयसार कलश-टीका के प्रवचन से]

शुद्ध चैतन्यसिन्धु ऐसा आत्मा अंतर में विराजमान है; उसे दृष्टि में लेने के लिये अंतर में कितना धैर्य होना चाहिये? बाहर की बात तो दूर रही, अंतर के विकल्पों से भी पार चैतन्यवस्तु है। उस चैतन्यवस्तु को जीव ने कभी जाना नहीं है। अनादि का 'अज्ञ' रहा है तो अब उसका ज्ञान करके 'सज्ञ' बन... अरे प्रभु! तेरा स्वभाव अंतर में परिपूर्ण विद्यमान है, उसका सत्कार कर... उसे उपादेय कर... ऐसा सर्वज्ञ परमात्मा की निर्दोष वाणी में आदेश है। इसके अतिरिक्त जो विकार को उपादेय कहे, वह वाणी वीतराग की नहीं हो सकती, वह दोषी जीव की वाणी है। चैतन्यसत्ता अपने अनंत धर्मों से भरपूर—जो अनुत्पन्न, अमलिन तथा अविनष्ट है—ऐसी त्रैकालिक स्वतंत्र सत्ता, उसे पर से भिन्न अंतर में देखना, सो अनेकांत है। वस्तु स्वयं गुण-पर्यायस्वरूप है; अभेददृष्टि से गुण-पर्यायें ही वस्तु हैं; आत्मा और उसके ज्ञान-आनंद आदि गुण एकमेक हैं। ऐसे एकमेक स्वभाव को दृष्टि में ले तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा।

'एक देखिए, जानिए, रमि रहिए एक ठौर'

आत्मा के जिन-जिन गुण-पर्यायोंरूप से आत्मा को देखो, उन गुण-पर्यायोंरूप आत्मा ही प्रतिभासित होता है। पर से तो आत्मा भिन्न ही भासित होता है और अपने गुण-पर्यायों एकमेक लगता है। अहा! अपने गुण-पर्यायें अपने साथ एकाकार हैं, फिर दूसरा उसमें क्या करेगा? दूसरे गुण-पर्यायों से तेरी अत्यंत भिन्नता है, तो दूसरे में तू क्या करेगा? अरे, तेरे ज्ञातादृष्टा के चैतन्यप्राण, उन्हीं से तेरा जीवन है; उसके बदले तू पर के कर्तृत्वरूप से अपना जीवन मानता है, उसमें तो

विपरीत मान्यता द्वारा तू अपने चैतन्य जीवन का घात कर देता है... विकार की कर्तृत्वबुद्धि से तो चैतन्य का मरण होता है; शांत-आनंद से भरपूर चैतन्य जीवन विकार के कर्तृत्व में नहीं रहता। भाई, चिदानन्द प्राण को दृष्टि में झेलकर अपने चैतन्य को जीवित कर। अरे, विकार का कर्तृत्व मेरे चैतन्य में नहीं है, मेरा चैतन्य तो विकार का अकर्ता है—ऐसी वीतरागीवाणी को आत्मा में झेलकर तू अपने चैतन्य को जीवित कर। अनादि से अज्ञानभाव के कारण मरण को प्राप्त होता था, उसे वीतराग की वाणी ने जीवित कर दिया!.... वाह, देखो तो सही, वीतराग की वाणी आत्मा को जीवित करती है। परमगुरु श्री तीर्थंकरदेव का उपदेश सुनने से भावमरण मिटता है। अहा! हम तो चैतन्यज्योति हैं, विकार हमारा काम नहीं है, उसके हम कर्ता नहीं हैं... हम तो ज्ञाता हैं!—इसप्रकार जहाँ वीतराग की वाणी को झेलकर अंतरोन्मुख हुआ, वहाँ भ्रांति दूर हो गई और सम्यक्त्व हुआ, अंतर में बिजली कौंध गई... चैतन्य भगवान जीवित हुआ... देखो, यह वीतराग की वाणी!! इसे सुनकर अंतर में बिजली जैसी झनझनाहट होती है और आत्मा जाग उठता है। आत्मा तो चैतन्य सम्राट है, विकार के कर्तृत्व जितना पामर आत्मा नहीं है। वह तो अनंतशक्ति का स्वामी चैतन्यसम्राट है; उसकी दृष्टि करने से आत्मा 'धर्म धुरंधर' होता है। चैतन्य की दृष्टि में लिया, वहाँ आत्मा ने धर्म की धुरा धारण की...

भाई, अपने चैतन्य की प्राप्ति तुझमें ही सुलभ है... उसमें तुझे किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नहीं है, स्वाधीनरूप से अंतर में उसकी प्राप्ति होती है।—ऐसा बतलानेवाली वीतरागवाणी पूज्य है। ऐसा पवित्र स्वभाव तो पूज्य-आदरणीय है, उस स्वभाव को प्राप्त हुए परमात्मा भी पूज्य हैं और उसे बतलानेवाली वाणी भी पूज्य है। अहा, जिस वाणी ने निमित्तरूप से ऐसा चिदानन्दस्वभाव बतलाया, उस वाणी को भी नमस्कार है!—वह वाणी सदा जयवंत रहे!

अनेकांतमय वह वाणी चैतन्य का अनेकांतस्वभाव दर्शानेवाली है। ऐसी वाणी को कौन झेलता है?—कि जिसमें अंतर के पुरुषार्थ की वीरता हो, वही अंतर्दृष्टि द्वारा यह वाणी झेल सकता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि—

वचनामृत वीतराग के, परम शांतरसमूल,
औषधि यह भवरोग की, कायर को प्रतिकूल।

राग से धर्म होता है, बाह्य से धर्म होता है—ऐसी पराधीन दृष्टि, सो कायरता है। ऐसे कायर

जीव, वीतराग की वाणी को नहीं झेल सकते। जिसने एकबार अंतर्मुख होकर वीतराग की वाणी झेल ली, उसके भवरोग का नाश हो जाता है। वीतरागस्वभाव का अनुसरण करनेवाली जो वाणी, वह वीतराग की वाणी है, उसे यहाँ नमस्कार किया है।

❀ ❀ ❀ ❀

भगवान की वाणी जड़-अचेतन होने पर भी उसे पूज्य क्यों कहा ?—तो कहते हैं कि वह वाणी सर्वज्ञस्वभाव की अनुसारिणी है... निमित्तरूप से वह सर्वज्ञस्वभाव को बतलानेवाली है, इसलिये निमित्तरूप से वह भी पूज्य है। जब वाणी का वाच्य ग्रहण किया, तब वाणी के प्रति बहुमान आया कि वाह! ऐसे चिदानंदस्वभाव को यह वाणी बतलाती है! अहा, वीतराग की इस वाणी ने आत्मा को जीवन दिया।

मोक्षमार्ग (छट्ठे-सातवें गुणस्थान) में झूलते हुए

संतों की टंकोत्कीर्ण स्पष्ट बात

(श्री प्रवचनसार, गाथा २३९; भाद्रपद शुक्ला १३, दिनांक १२-९-६२)

आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव एक साथ होने पर भी निर्विकल्प वीतरागी ज्ञान हुए बिना, अल्पराग का सद्भाव भी मोक्षमार्ग में बाधक ही है—ऐसा गाथा २३९ में कहते हैं। अन्वयार्थ—और यदि देहादिक के प्रति परमाणु जितनी भी मूर्च्छा विद्यमान हो तो वह भले ही सर्व आगमधर हो परंतु सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

सातवें गुणस्थान के योग्य निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, चारित्रलक्षण आत्मज्ञान हो और छठवें गुणस्थान का अंतर्मुहूर्त काल जो अंशतः रागदशा है, उसमें आगम का ज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतपना होने पर भी मात्र उतना शुभराग मोक्षकार्य के लिये अकिंचित्कर है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। जहाँ अपूर्ण दशा-छठवें गुणस्थान के योग्य वीतरागता को मोक्ष का साधन नहीं कहा तो अकेला

शुभरागरूप व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का साधन कैसे होगा? क्योंकि वह बंध का कारण है। शरीर की क्रिया तो मोक्ष का कारण नहीं है किंतु शुभराग भी मोक्ष का कारण नहीं है। नियमसार गाथा २ की टीका में स्पष्ट कहा है कि—मोक्षमार्ग परम निरपेक्ष ही होता है, इसलिये स्व से सापेक्षरूप अपने शुद्धात्मा के आश्रय से ही होता है तथा पर से निरपेक्ष ही होता है, ऐसा समझना चाहिये। और मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि—'मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, किंतु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ यथार्थ मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है, तथा जो मोक्षमार्ग नहीं है किंतु मोक्षमार्ग का निमित्त है व सहचारी है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा है।' वास्तव में तो एक वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग सिद्ध हुआ। यहाँ सातवें गुणस्थान से मोक्षमार्ग कहा है और छठवें गुणस्थान के राग को भी मोक्षमार्ग में बाधक माना है।

शरीरादि के प्रति अणुमात्र जितनी मूर्च्छा हो तो वह समस्त आगम को जानता हुआ भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता। यहाँ सम्यग्ज्ञानी की बात है।

टीका—श्रुतज्ञानी समस्त आगम के सार को हस्तामलकवत् जानता है तथा भूत, वर्तमान और भविष्यत को स्वोचित ज्ञान के विकास द्वारा जानता है।

आत्मा का स्वभाव त्रिकाल की स्वोचित पर्यायों के साथ समस्त द्रव्यों को जानना है, इसलिये वह ज्ञानी साधु भूत, वर्तमान और भावी पर्यायों के साथ समस्त द्रव्य समूह को जाननेवाले ऐसे अपने आत्मा को जानता है, श्रद्धा करता है और संयमित रखता है। उस पुरुष के आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतपना—यह तीनों एकसाथ होने पर भी यदि उस पुरुष के किंचित्मात्र संज्वलनकषायरूपी चारित्र मल में युक्तता के कारण शरीरादि प्रति अल्प मूर्छा द्वारा मलिनता रहने से निर्मल, निर्विकारी शुद्ध उपयोग में परिणत होकर सातवें गुणस्थान के योग्य ज्ञानात्मक आत्मा का अनुभव नहीं करता तो वह पुरुष मात्र उतने (किंचित्) मोहमल कलंकरूप जो कीला, उसके साथ बाँधे हुए कर्मों से न छूटता हुआ सिद्ध (मुक्त) नहीं होता। इसमें सातवें गुणस्थान के निर्विकल्प शुद्धोपयोगी आत्मज्ञान से शून्य आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान संयतत्व का युगपत्पना भी अकिंचित्कर ही है। इसमें निमित्त और शुभराग कथंचित् मोक्षमार्ग कहाँ रहा?

साधु परमेष्ठी—बारंबार सातवाँ गुणस्थानक में से च्युत होकर बारंबार छट्ठे गुणस्थान में आते हैं, वह अपवादिक, सास्रव एवं गौण मुनिपना है। उसमें जितना राग है, वह हेय है—बाधक ही है; यहाँ यह भलीभाँति स्पष्ट किया है।

भावश्रुतज्ञान में सम्यग्ज्ञानी को अपने विकास के योग्य सर्व, स्व-परद्रव्य-गुण-पर्यायों का स्वरूप बराबर भासित होता है; भेद मात्र प्रत्यक्ष=परोक्ष ज्ञान का है। सम्यग्ज्ञानरूप से केवलज्ञान और श्रुतज्ञान समान है, वह बात गौण करके राग का अंश सर्वथा बाधक ही है—यह बतलाना है। छट्ठे गुणस्थान में बारंबार आनेवाले संयमी मुनि हैं। स्वाश्रय के बल से तीन कषायों का अभाव किया है, सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प उपयोगरूप आत्मज्ञान में बारंबार आते हैं किंतु छट्ठे गुणस्थान के काल में उन्हें कर्मक्षय का कारण ऐसा साक्षात् मोक्ष का उपाय नहीं है, इसलिये उस पुरुष को मंदप्रयत्नरूप निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों होने पर भी किंचित् मोहवश २८ मूलगुण—व्यवहाररत्नत्रय और शरीरादि के प्रति अल्प रागरूप अस्थिरता रहती है; राग में एकत्वबुद्धि नहीं है, राग को करने योग्य नहीं मानते, तथापि छट्ठे गुणस्थान के योग्य राग—(विकल्प) होने से इतनी मात्र मलिनदशा में रहने से निरुपराग ज्ञानानंद उपयोग में अपने को परिणत करके अकेले अखंड ज्ञानात्मक आत्मा का अनुभवन नहीं करता अर्थात् सातवें गुणस्थान के योग्य निर्विकल्प शुद्धता को ग्रहण करके अखंड आनंदधारा में निश्चल नहीं रहता तो वह पुरुष मात्र उतने (किंचित्) मोहमलरूप जो कीला, उसके साथ बँधे हुए कर्मों से न छूटता हुआ, सिद्ध परमात्मपद प्राप्त नहीं करता। सच्चे भावलिंगी मुनि को छट्ठे गुणस्थान के काल में अट्ठाईस मूलगुण, छह आवश्यक आदि शुभविकल्प आते हैं, वह मोहमल की कीली है, उतना अजागृतभाव है, प्रमाद है, उसमें मोक्ष का उपाय नहीं होता।

प्रथम श्रद्धा में यह वीतरागता ही मोक्षमार्ग है, ऐसा स्पष्टरूप से स्वीकार करना चाहिये। अहो! देखो.. मोक्षमार्ग में झूलते हुए वीतरागी संतों की टंकोत्कीर्ण स्पष्ट बात।

स्वभावोन्मुख होते ही प्रथम श्रद्धा में, दृष्टि में, निर्णय में वीतरागता, यथार्थता और स्वतंत्रता का स्वीकार तथा विरुद्ध बात का निषेध हो जाता है, उसका नाम अनेकांत मार्ग है। कथंचित् शुभराग भी मोक्षमार्ग और कथंचित् वीतरागभाव मोक्षमार्ग—इसप्रकार संशयवाद, खिचड़ीवाद वीतरागमार्ग में नहीं है—ऐसा निर्धार करने के पश्चात् मोक्षमार्ग में पूर्ण वीतरागता न हो, वहाँ भूमिकानुसार कैसा राग निमित्तरूप से होता है, वह बतलाने के लिये तथा उसका आश्रय छुड़ाने (निश्चय भूतार्थ का आश्रय कराने) के लिये शुभव्यवहार को उपचार से (असद्भूतव्यवहारनय से) मोक्षमार्ग कहा जाता है। ज्ञानी तो भूतार्थ के आश्रय से समस्त व्यवहार को हेय मानते हैं। 'हंत' कहकर उसका खेद प्रगट किया है, तथापि वह होता है—ऐसा जानना, सो व्यवहारज्ञान का प्रयोजन है।

यहाँ छट्ठे गुणस्थान के राग को भी मोक्षमार्ग के लिये अकिंचित्कर कहा, उनसे यह प्रगट होता है कि **किसी भी प्रकार के राग से कल्याण नहीं है। देखो, जिसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है, उसी को बंध का कारण कहा है। संतों ने कुछ भी गुप्त नहीं रखा है—स्पष्ट बात की है।**

छट्ठे गुणस्थान का शुभराग भी मोक्ष के लिये अकिंचित्कर है ही, किंतु अंशत: स्वोन्मुखता-सहित तत्त्वार्थश्रद्धान, आगमज्ञान तथा छट्ठे गुणस्थान का संयतपना भी मोक्ष के लिये किंचित् कार्यकारी नहीं होता। शरीर की नग्नदशा हुई, उससे आत्मा को लाभ हो, ऐसा नहीं होता।

यहाँ दृष्टि में—श्रद्धा में तो प्रथम से ही सर्व रागादि को विरुद्ध जानकर उसका त्याग हो गया है, किंतु चारित्र में किंचित्मात्र शुभराग—जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहा है—वह भी आस्रवतत्त्व है; इसलिये मोक्षमार्ग में बाधक ही है।—इसप्रकार प्रथम से ही मोक्षमार्ग का निरालम्बी स्वरूप जानना चाहिये।

भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से जितना मोक्षमार्ग—वीतरागभाव विकसित हुआ, उसमें किसी भी समय राग की अपेक्षा नहीं है। छट्ठे गुणस्थान में भावलिंगी मुनि को २८ मूलगुण, छह आवश्यक आदि शुभविकल्प आते हैं और उतने अंश में चैतन्य की जागृति रुकती ही है, इसलिये वह अशुद्ध उपयोग है, शुद्धोपयोग नहीं है। इसलिये आचार्यदेव ज्ञानी के शुभ उपयोग को मोक्ष के लिये अकिंचित्कर कहते हैं।

शास्त्ररचना करूँ, मुनिसंघ को उपदेश दूँ, भगवान के दर्शन, तीर्थयात्रा करूँ—इत्यादि राग की वृत्ति उठती है किंतु वह चैतन्य की जागृति को रोकनेवाली है, पुण्यबंध का कारण है। कोई कहे कि मुनिदशा में जो शुभराग रहता है, वह संवर-निर्जरा का कारण है—तो ऐसा नहीं है। किसी भी प्रकार के राग हो, वह बंधन-संसार का मार्ग है।

सर्व रागादि विभाव से निरपेक्ष अखंड स्वभाव में ढलना, सो मोक्षमार्ग है। उस मोक्षमार्ग को वर्तमान वर्तती हुई शुद्धपर्याय का आश्रय नहीं है, किंतु अखंडानंद शुद्धात्मद्रव्य का ही आश्रय है।

श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री नियमसार में कहते हैं कि—मुनियों को 'मैं ज्ञानानंद हूँ' इत्यादि भेद-विकल्प उठते हैं, उन्हें मोक्ष होगा या नहीं कौन जाने? अर्थात् विकल्पपरायण को मोक्ष नहीं होगा।

प्रश्न—ज्ञानी के भोग को (अशुभभाव को) निर्जरा का कारण कहा है तो ज्ञानी के शुभभाव से निर्जरा (धर्म) क्यों नहीं?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वह आस्रवतत्त्व होने से बंध का ही कारण है। जहाँ ज्ञानी के भोग को निर्जरा का हेतु कहा है, वहाँ तो निर्मल श्रद्धा की मुख्यता से तथा राग का स्वामित्व नहीं है, उस अपेक्षा से कहा गया है; वैसे लक्षण दृष्टि से तो ज्ञानी को भी कोई भी राग बंध का ही कारण है। मुनिदशा के योग्य शुभराग-मंदकषाय, व्यवहाररत्नत्रय होता है, वह भी आस्रवतत्त्व होने से बंध का ही कारण है—निर्जरा का कारण नहीं है। यह अनेकांत सिद्धांत प्रथम से ही मानना चाहिये। पश्चात् भूमिकानुसार जो शुभरागरूप निमित्त होता है, उसका ज्ञान कराने के लिये उपचार से उसे निर्जरा का कारण कहना, सो व्यवहार है। किंतु तत्त्वदृष्टि से वैसा नहीं है।

श्री टोडरमलजी ने चौथे गुणस्थान से आत्मज्ञान लिया है और यहाँ तो मोक्षमार्ग का निर्विकल्प आत्मज्ञान से सातवें गुणस्थान से कहा है। देखो, यह शास्त्र के कर्ता आचार्यदेव पंचम काल के मुनि थे। वे जानते हैं कि—इस काल साक्षात् मोक्ष की योग्यता नहीं है, तथापि जैसी वस्तुस्थिति मोक्षमार्ग के लिये है, वह स्पष्ट बतला दी है। मुनि को बारंबार (प्रत्येक अंतर्मुहूर्त के पश्चात्) छट्ठा गुणस्थान आता है किंतु उतने मात्र राग का भी नकार वर्तता है। शास्त्र का राग आता है, तथापि उसे भी तोड़कर निर्विकल्प शुद्धोपयोग में स्थिर रहना चाहते हैं और उस दशा को मोक्षमार्ग कहना चाहते हैं।

शास्त्र में अनेक प्रकार से कथन आता है। जहाँ द्रव्यदृष्टि की मुख्यता से कथन आये, वहाँ समयसारजी में कहा है कि—चतुर्थ गुणस्थान में गृहस्थदशा हो या चार गतियों में से किसी भी गति में हो, किंतु सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ '**स एव मुक्तः**' हो गया; वहाँ निश्चयश्रद्धा अपेक्षा से, स्वामित्व अपेक्षा से समझना चाहिये। साथ ही अविनाभावी स्वरूपाचरणचारित्र भी होता ही है, किंतु उतने से मोक्षमार्ग नहीं हो जाता। यहाँ सम्यक्त्व के उपरांत वीतरागचारित्र की बात है; इसलिये कहा है कि छट्ठे गुणस्थान की शुद्धता और शुभव्यवहार है, वह मोक्ष की रचना के लिये अयोग्य है। वह जीव उतने अंश में शरीरादि के प्रति मूर्च्छा द्वारा मलिन होने से, अपने को निर्मल निर्विकारी उपयोग में परिणत करके ज्ञानात्मक आत्मा का सतत अनुभवन नहीं करता तो वह पुरुष मात्र उतने (किंचित्) मोहमलकलंक रूप कीली के साथ बँधे हुए कर्मों से नहीं छूटता हुआ, सिद्ध नहीं होता। इससे निश्चित होता है कि निर्विकल्प आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञान-तत्त्वार्थ-श्रद्धान-संयतत्व का एक साथ होना भी अकिंचित्कर ही है। शुभराग कथंचित् किंचित् सहायक है—ऐसा नहीं है। देखो, यह आचार्यदेव की स्पष्टरूप से निःशंक घोषणा है।

अब, इन तीन के साथ निर्विकल्प आत्मज्ञान का होना किस प्रकार है सो बतलाते हैं—

पंच समिदो तिगुत्तो पंचेंदिय संवुडो जिदकसाओ।
दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो॥२४०॥

पाँच समितियुक्त, पाँच इन्द्रियों के संवरवाला, तीन गुप्ति सहित, जित-कषाय एवं दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण ऐसा जो श्रमण, उसे संयत कहा है।

टीका—जो पुरुष अनेकांत चिह्नवाले शास्त्रज्ञान के बल से सकल पदार्थों के स्वरूप को जानते हुए, विशद एक पूर्ण ज्ञानस्वरूप ऐसे अपने आत्मा की श्रद्धा करता है, अनुभव करता है तथा ऐसे आत्मा में ही नित्य निश्चल रहना चाहता है.... यहाँ अनेकांत के अनेक अर्थ अस्ति-नास्ति से प्रसिद्ध होते हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्यरूप से है, अन्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से नहीं है, अन्य के आधार से भी नहीं है। द्रव्य द्रव्यरूप से है, गुण-पर्याय के भेदरूप से नहीं है। गुण-पर्याय अपनेरूप है, अन्यरूप हैं। पर्याय, पर्यायरूप से है; द्रव्य-गुणरूप से नहीं है। द्रव्य सत्, गुण सत् नित्य है, अनित्य नहीं है। एक समयस्थित पर्याय सत् अनित्य ही है, नित्य किसी काल में नहीं है। उसमें भी उत्पाद सत् उत्पाद के आश्रय से है; व्यय व्यय के आश्रय से है और ध्रुव ध्रुव के आश्रय से, कोई किसी अन्य के आश्रित नहीं है।—इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य में स्वतंत्र सत्पने से अस्ति-नास्तिपना है; वह परसत्ता से निरपेक्षता तथा स्वसत्ता से सापेक्षता बतलाता है। ऐसे सर्वज्ञ कथित आगमज्ञान के बल से सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की श्रद्धा करता हुआ, उसका अनुभव करता हुआ तथा आत्मा में ही नित्य निश्चलवृत्ति को चाहता हुआ, संयम के साधनरूप बनाये हुए मुनित्व योग्य शरीरपात्र को पाँच समिति से अंकुशित प्रवृत्ति द्वारा प्रवर्तित करता हुआ, (निमित्त के आरोप की योग्यतारूप शरीर कब कहलाया, कि जब स्वयं वीतरागचारित्र रूप हुआ तब)—इसप्रकार क्रमशः पाँच इन्द्रियों के निश्चल निरोध द्वारा जिसके काय-वचन-मन का व्यापार विराम को प्राप्त हुआ है—ऐसा होकर (मन पावें विश्राम) चिद्वृत्ति का परद्रव्य में भ्रमण रुक जाने से, कषाय के साथ ज्ञान को ज्ञेय-ज्ञायकपना होने पर भी, रागादि अपनी चारित्रपर्याय में उत्पन्न, उत्पन्न होते हैं; जैसा राग हो, वैसा ज्ञेयरूप से ज्ञात होने पर भी, लक्षण भेद से परस्पर भेद जानता होने से, उत्पन्न होने से पूर्व टाल देता है, स्वभाव में सतत जागृत रहता है।

यहाँ साधक को चारित्रगुण की एक पर्याय में एक समय में एक साथ चार बोल हैं, ऐसा जानता है।

✻ अंशत: मलिनता में १—भाव आस्रव और २—भाव बंध।

✻ अंशत: निर्मलता में ३—भाव संवर और ४— भाव निर्जरा।

उनका समय एक, द्रव्य एक, क्षेत्र एक और भाव में भेद।

—इसप्रकार भावरूप एक समय की एक पर्याय में चार भेद हैं।

द्रव्यस्वभाव के आश्रय से जितनी निर्मलता हुई वह संवर, निर्जरा और मोक्षमार्ग है; और उसी समय जितने अंश में निमित्त, व्यवहार के आश्रय में रुकना हुआ, उतना राग भाव है और उसका नाम आस्रव तथा बंध है। दोनों के स्वभाव में भेद है–आकुलतारूप विभाव है और निराकुल शांति, वह स्वभावभाव है। इसप्रकार लक्षणभेद से स्वभाव भेद को जानकर शुभराग को भी पररूप से, विरोधी शक्तिरूप से निश्चित करके स्वाश्रय के बल से सर्व रागादि को कुशल मल्ल की भाँति अत्यंत मर्दन कर-करके एक साथ मार देता है।

अहो! यह तो वीतराग धर्म का पारायण है। सत्य समझने के लिये सूक्ष्म परीक्षा होना चाहिये। आत्मा अनंत शक्ति का भंडार है, उसके आश्रय से निर्मल भेदज्ञान बल उत्पन्न होता है; उसमें कषायकण तथा त्रैकालिक अकषायस्वभाव को भिन्न जानकर, स्वाश्रित अखंड ज्ञानधारा से रागधारा (कर्मधारा) को पररूप निश्चित करके (निश्चित तो पहले से ही है किंतु यहाँ विशेष) उग्ररूप से स्वोन्मुखता के बल से एकाग्र होने पर रागांश नष्ट होते हैं—उत्पन्न नहीं होते।

राग उत्पन्न हुआ और उसी समय उसका मर्दन करके मार डालना नहीं बनता; किंतु त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव में रागादि नहीं हैं, द्रव्यस्वभाव रागादि का अकारक है और उसके आश्रय से निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह भी रागादि का कारण नहीं है तथा द्रव्यस्वभाव में रागादि का त्रिकाल अभाव है, इसलिये राग का ग्रहण-त्याग उसमें नहीं है, किंतु वर्तमान पर्याय में अपने विपरीत पुरुषार्थ से रागादि उत्पन्न होते हैं, वे चैतन्य की जागृति को रोकनेवाले हैं, आकुलतामय ही हैं—इसप्रकार उनका विरोधी स्वभाव जानकर, राग को सर्वप्रकार से बाधक जानकर ध्रुव ज्ञानानंद स्वभाव में उग्र एकाग्रता से निश्चल होता है, वहाँ राग की उत्पत्ति नहीं होती; इसलिये कहा है कि—उग्ररूप से स्वभावभावोन्मुख होने पर अक्रम से राग का छेदन कर डालता है—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। राग का नाश करो, यह उपदेशवचन है। रागादि का व्यय किया नहीं जा सकता; असंख्य समय का स्थूल उपयोग है, वह समय-समय के राग को कैसे पकड़ सकेगा? और जिस समय राग आया, उसी समय उसका नाश कैसे होगा? अभी राग हुआ नहीं है तो उसे टालना क्या?

है, वह दूसरे समय टल जायेगा और पर्याय के लक्ष से प्रति समय नया-नया राग होता रहेगा ही इसलिये जिसमें अंशमात्र भी राग नहीं है, ऐसे त्रैकालिक भूतार्थ-स्वभावोन्मुख हुआ, वहाँ राग की उत्पत्ति ही नहीं हुई—उसका नाम राग का त्याग है। प्रथम, चतुर्थ गुणस्थान में भूतार्थ स्वभाव का ग्रहण करनेवाली निर्मल श्रद्धा का उत्पाद तथा मिथ्यात्वादि का व्यय होता रहता है; पश्चात्, विशेष स्वोन्मुखतारूप भेदज्ञान के बल से क्रमशः अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के नाम से विभाव की उत्पत्ति का अभाव होता है। वस्तुस्वरूप ऐसा ही है। यहाँ अक्रम से नाश करता है—ऐसा उस पुरुषार्थ बतलाने के लिये कहा है।

उत्तम क्षमादि दसलक्षण पर्व बारह महीने में तीन बार आता है, किंतु भाद्रपद मास में विशेषतः धर्मपर्व के रूप में मनाने की परिपाटी है।

अंतरचिदानन्द स्वरूप में लीन होनेवाले मुनि रागादि परद्रव्य से शून्य अर्थात् परद्रव्य के अंशमात्र आलंबन से रहित अर्थात् सातवें गुणस्थान में रागादि व्यवहारभावों से निरपेक्ष होने के कारण विशुद्ध दर्शन-ज्ञानमात्र स्वभाव से परिपूर्णतः विद्यमान निज-आत्मतत्त्व में नित्य निश्चल परिणति उत्पन्न हुई है। इसलिये वह आत्मा साक्षात् संयत ही है; और उसी को आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयतपने की एकता के साथ शुद्धोपयोगरूप आत्मज्ञान का युगपत्पना सिद्ध होता है, और वह मोक्षमार्ग में शोभायमान होता है।

(गाथा २४० का प्रवचन समाप्त, तारीख १२-९-६२)

अध्यात्मयोगी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी

(७५ वीं जन्म जयन्ती)

धन्य अवतार!

हे परम उपकारी गुरुदेव! सत्य के अवतार....

आप श्री का अवतार धन्य है, आपकी ७५ वीं जन्म-जयंती मनाते हुए हम भक्तों को बहुत हर्ष होता है। समर्थ दिगम्बर संत पूर्वाचार्यों के वीतरागी वैभव से भरपूर शास्त्रादि हमको मिलने पर भी उनके रहस्य वेत्ता के अभाव में, अज्ञान अंधकार की गहरी छाया व्याप्त हो रही थी, गाढ़ अंधेरा था, ऐसे अवसर में आपका पुनीत जन्म हुआ, आपने वीतराग सम्यक् अनेकांतमय नि:शंक मार्ग सम्हाल कर सूक्ष्म दृष्टि द्वारा श्रुतसागर का मंथन कर अमृत निकाला और भव्य जीवों को परोसा। 'संत के बिना अंत की बात का अंत पा सकते नहीं' इस सूत्र की सिद्धि आपमें दृष्टिगत होने पर आपकी सुमधुर अध्यात्म रस से भरपूर सुमधुर वाणी को सुनने के लिये आपके समीप भारत के कौने-कौने से हजारों धर्म जिज्ञासु आते हैं। आप उनको उदार चित्त से निर्मल ज्ञान गंगा के पावन जल का पान कराते हैं, आप पराधीनता की निवृत्ति, स्वाधीनता की प्राप्ति के प्रणेता हो ऐसा समझकर आपका शरण ग्रहण करनेवाले सनाथ हुए हैं। आपके परमोपकार को याद करके आपके इस जन्म जयंती दिवस पर आपको हमारा भक्तिपूर्वक शत-शत वंदन है।

७५ वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर

आभार–दर्शन

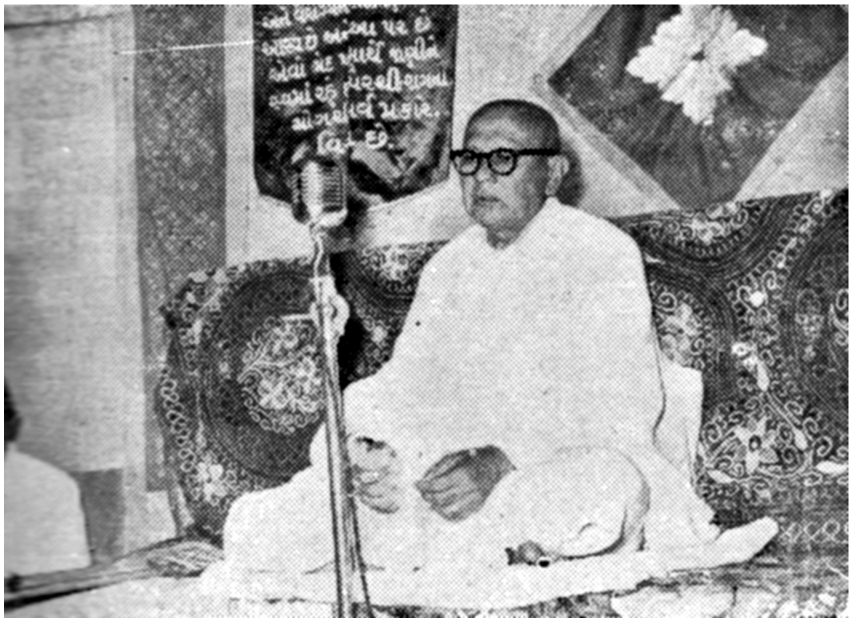

हे सिद्धपद प्राप्ति के पंथ में विहार करते परम पावन
पथिक परमोपकारी पूज्य गुरुदेव

(१) कल्याणमय, उत्तम, मंगल और शरणरूप चिन्मुद्रांकित अध्यात्म तत्त्व के दिव्य संदेश द्वारा अध्यात्म शिक्षा के सुवर्ण निधान आपने खुले किये–प्रकाशित किये, कहाँ से! निज आत्मसमृद्धि में से और इससे प्रभावित तथा प्रमोदित हुए अनेक भव्यों।

(२) प्रवाहित किये सम्यक् श्रुतामृत के प्रवाह जिससे शुद्ध हुए हृदय उस श्रुतामृत में स्नान करनेवाले भव्यों के।

(३) गुंजाये नाद मधुर श्रुतज्ञान की बंसरी का कि जिसके द्वारा मंत्रमुग्ध बनकर नाच उठे अनेक मुमुक्षुओं के हृदय।

(४) बोये धर्म बीज भव्यों के आत्मक्षेत्र में और बरसाये अमृतरस मेघ जिससे संपोषण मिला उस धर्म बीज को।

(५) प्रगट किये महान वैभव विराग विभूति का जिससे उसकी प्राप्ति कर्ता को सचमुच प्रतिभास हुआ आत्मवैभव की महानता और दुन्वी वैभव की अति तुच्छता।

(६) दिया तादृश भावभासन सहजानंद परिणति का आपकी अनुपम स्वरूप सम्पदा द्वारा।

(७) उतारे–नष्ट किये मिथ्यात्व विष अमोघ आत्मस्पर्शी कल्याणकारिणी वाणी की मुरली द्वारा।

(८) नष्ट किया अज्ञानांधकार अपने ज्ञानभानु के प्रकाशमय किरणों के द्वारा।

(९) प्रदर्शन में रखे अध्यात्म श्रुतसागरों से चुन–चुनकर अनेक महामूल्यवान सिद्धांत मौक्तिकों।

(१०) अमंदतया प्रतिपादन किया कि साधित होता है आत्महित मात्र निज शुद्धात्म द्रव्य का आलंबन के बल द्वारा ही।

(११) कराई अपेक्षा स्वद्रव्य–स्वभाव की और उपेक्षा सर्व परद्रव्य–परभाव की।

(१२) प्रकाशित किया निडर–निर्भयतया वीतरागी सत्यमार्ग और की अपूर्व धर्म प्रभावना।

(१३) दर्शाया महात्म्य, परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तनशील आत्मतत्त्व का।

(१४) शमन किये संसार के त्रिविध ताप अंतरंग में से झरते शांति के अमृतरस बिंदुओं द्वारा।

(१५) बनाया सुलभ मोक्षपुरी पहुँचने का मार्ग बनकर अध्यात्म कप्तान।

(१६) पावन किये हमारे अंतरंग आंगन पधराकर अनंत सिद्ध भगवंतों को।

(१७) सुनाया समयसार कर्ताकर्म और बन्ध अधिकार और दिया अकर्ता ज्ञायकस्वरूप के सन्मुख होने का दिव्य संदेश, संदेश अबंध स्वभाव का।

(१८) किया स्वाध्याय नियमसार का शुद्धभाव अधिकार प्रवचन में गाया सतत परमपारिणामिक भाव।

उपरोक्त सभी विशिष्टताओं के कारण हम आपके अत्यंत ऋणी हैं, अर्थात् हम अपूर्व और अत्यंत उपकार का प्रति उपकार करने में सर्वथा असमर्थ कमजोर हैं और इसलिये आपके चरणकमल में उल्लसित भक्तिभाव से वंदन–नमन करके अंतर के गहरे भाव सहित आपका अत्यंत उपकार मानते हैं। इस ७५ वीं वर्षगाँठ के उत्सव में हम परमात्मा के सामने भावना भाते हैं कि चैतन्य विहारी वीतरागी मार्गप्रकाशक तथा प्रभावक आप श्री सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव की जय हो।

रामजी माणेकचन्द दोशी

प्रमुख

श्री दिगम्बर जैन संघ राजकोट तथा श्री खेमचन्द जेठालाल शेठ

पोन्नूर यात्रा तथा जन्म जयंती अंक–

शान्त सुधारस–अमृत सिंचक पू० कानजी स्वामी वृक्ष नीचे स्वाध्याय करते हैं

आप संत की शीतल छाया में आपकी अध्यात्मरस झरती मधुर वाणी, हृदय से सुनने से संसार के आताप शांत होते हैं, जैसे वृक्ष का आश्रय करनेवाले पुरुष को छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। स्वात्मानुभूति–दर्शक आपकी वाणी, पामर को प्रभुता की दृष्टि देकर उनकी प्रभुता की पहिचान कराते हैं। विस्मृत चैतन्य परमपद याद कराकर मोक्षमार्ग का अंकुर प्रगटाते हैं। धर्म जिज्ञासुओं के लिये कल्पवृक्ष समान महामनोज्ञ वदतांवर... आपके उपकार का प्रति उपकार करने में असमर्थ ऐसे, हम मुमुक्षुगण आपको परम भक्ति से वंदन करते हैं।

आगम और अध्यात्म रहस्य

स्व० कविवर पं० बनारसीदासजी रचित 'परमार्थ वचनिका' पर
परम उपकारी पूज्य स्वामीजी के प्रवचन
(सोनगढ़ : तारीख १४-१-६३)

यह जरा सूक्ष्म बात है। परमार्थ वस्तुस्वरूप कैसा है—उसका स्पष्ट अनुभव कराने के लिये श्री बनारसीदासजी ने यह कथन किया है।

जगत में तीनों काल अनंत जीवद्रव्य हैं। उनमें से कोई भी एक संसारी जीवद्रव्य लें तो उसके अनंत गुण, अनंत पर्यायें, तथा एक-एक गुण के असंख्यात प्रदेश हैं। उतने प्रमाण में स्वद्रव्य प्रमाण उसकी सत्ता और लम्बाई-चौड़ाईरूप स्वक्षेत्र है। जीव अर्थात् आत्मवस्तुरूप द्रव्य; उसमें ज्ञान, दर्शन, सुख, चारित्र, वीर्यादि गुण संख्या से अनंत हैं; प्रत्येक गुण आत्मा के असंख्य प्रदेश में (स्वक्षेत्र में) व्यापक है। अनंत गुण आत्मा के आश्रय से हैं। जितना क्षेत्र आत्मा का है, उतना ही क्षेत्र-असंख्य प्रदेश सभी गुणों के हैं। आत्मा स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल और भावरूप सामर्थ्य से कितना विशाल है, उसकी यह बात है। आत्मा भी अनंत परवस्तुओं के मध्य में अनंत अन्यत्वरूप से टिका रहता है—ऐसा सर्वप्रकार से स्वतंत्र है।

यहाँ पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक अशुद्ध, मिश्र और शुद्धदशारूप व्यवहार के तीन भेद किये हैं। पहले तो आत्मा में एक ही बात घटित करते थे, किंतु यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ संसारी दशा में जहाँ जिन्हें लागू हो, उन सर्व जीवों की बात है।

एक आत्मा, उसके अनंत गुण, प्रत्येक गुण असंख्य प्रदेशी, किसी के प्रदेश अलग-अलग नहीं हैं। एक-एक प्रदेश में एकक्षेत्रावगाह संबंधरूप से अनंत कर्मवर्गणा, एक-एक कर्मवर्गणा में अनंतानंत पुद्गलपरमाणु, वह प्रत्येक पुद्गलपरमाणु अपने अनंत गुणों तथा पर्यायों सहित विराजमान है। इसप्रकार एक संसार स्थित जीव पिण्ड की अवस्था है। इसप्रकार संसारदशा में अनंत जीवद्रव्य सपिण्डरूप जानना चाहिये।

निगोद एकेन्द्रिय अर्थात् स्थावर-साधारण वनस्पतिकायिक; उसके असंख्य लोकप्रमाण असंख्य शरीर हैं। अंगुल के असंख्यवें भाग में भी असंख्य शरीर, उनमें से एक शरीर में विद्यमान जीवों की संख्य अनंती है-जो अनंत सिद्ध भगवान हो गये, उनसे अनंतगुने हैं। प्रत्येक जीव को

स्वतंत्र असंख्य–प्रदेशरूप स्वक्षेत्र है, प्रत्येक देश में उसे अनंत कार्मणवर्गणाएँ, प्रत्येक कार्मण –वर्गणा में अनंतानंत पुद्गलपरमाणु अपने अनंत गुण, अनंत पर्यायों सहित हैं। इसप्रकार अनंत जीवद्रव्य बंधपर्याय में एकक्षेत्रावगाह संबंधरूप जानना चाहिये। प्रत्येक जीव को संसारदशा में अनंतानंत पुद्गलद्रव्यों से संयुक्त मानना चाहिये। सर्वज्ञ–वीतराग कथित जैन शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य किसी मत में ऐसा वर्णन नहीं हो सकता। अनंत जीव–पुद्गल एकक्षेत्र में एकसाथ रहते हैं, तथापि दोनों की परिणति भिन्न–भिन्न स्वतंत्र ही है। उसका वर्णन—

निगोददशा में एक क्षेत्र में अनंत जीव रहते हैं। सर्व जीव एक श्वास में अठारह बार जन्म–मरण करते हैं। आयु, श्वास, आहार और इंद्रिय—यह चारों उन सबके एक–से हैं, तथापि प्रत्येक जीवद्रव्य की पर्याय प्रति समय भिन्न–भिन्न होती है, किसी के परिणाम किसी से मिलते नहीं हैं। अहो, कितनी स्वतंत्रता! अनंत काल से एक शरीर में रहनेवालों में से कुछ तो शुभभावरूप परिणाम करके मनुष्य भी होते हैं, कुछ अन्य पर्याय धारण करते हैं अथवा वहीं रहते हैं; किसी को किसी का कारण लागू नहीं होता। उसीप्रकार प्रत्येक पुद्गलद्रव्य का परिणमन भिन्न–भिन्न रूप है, वह किसी दूसरे से नहीं मिलता।

एक जीवद्रव्य की जिसप्रकार की अवस्था जिससमय उत्पन्न हुई, उसीसमय उसके अनंत गुणों की अवस्थाएँ उसके योग्य ही होती हैं, उनमें से कोई भी अवस्था किसी दूसरे से नहीं मिलती। एक जीव की अर्थपर्यायें तथा व्यंजनपर्यायें दूसरे जीव से नहीं मिलती। कभी अंगुल के असंख्यवें भाग हीन पर्याय हो जाती है, तो कभी एक हजार योजन के महामच्छ की पर्याय प्राप्त होती है। ज्ञानादि की पर्यायें भी प्रतिक्षण भिन्न ही होती हैं। आठवें, नववें और दशवें गुणस्थान में चारित्रगुण की पर्याय में अमुक समानता किसी प्रकार है, किंतु सर्वथा समानता नहीं होती। आकार में कोई जीव समान दिखायी देते हैं, किंतु सूक्ष्मरूप से असमानता होती ही है।

'एकोऽहं बहुस्याम्'—मैं एक हूँ, अब अनेकरूप होऊँ—ऐसा नहीं है। सर्वव्यापक एक अद्वैत आत्मा ही है, वह सबमें वास करता है, ऐसा भी नहीं है। जीव–आत्मा त्रिकाल अनंत हैं, प्रत्येक की सत्ता–शक्ति अर्थात् गुण और गुणों की पर्यायें अर्थात् नयी–नयी अवस्थाएँ भिन्न–भिन्न हैं।

केवलज्ञान अर्थात् परमात्मदशा प्रगट होने के पश्चात् भी अनंत सिद्धों के मध्य में स्थित होने पर भी प्रत्येक के आकार में असमानता है। केवलज्ञानादि नव केवललब्धि आदि में समानता होने पर भी सूक्ष्मरूप से किसी प्रकार असमानता होती है।—इसप्रकार प्रत्येक जीव का पर से अन्य

अवस्थारूप स्वतंत्र परिणमन ही होता है। इसप्रकार अनंतानंत स्वरूप जीवद्रव्य अनंतानंत अवस्थारूप वर्त रहे हैं। देखो, संसारदशा होने पर भी सर्व प्रकार से स्वतंत्र हैं। प्रत्येक आत्मा इतना बड़ा है-महान है, ऐसा जानकर, क्षणिक विभाव का आदर, आश्रय छोड़कर, त्रैकालिक एकरूप-पूर्ण ज्ञानघन शुद्ध ज्ञायक हूँ—ऐसा निर्णय करे तो पर से मुझे लाभ-हानि नहीं है; पराश्रय से—राग से लाभ नहीं है—हानि ही है—ऐसा जाने और हित का कारण स्वयं ही है, ऐसा जानकर अपने अखंडस्वरूप में दृष्टि, ज्ञान और एकता करनेवाला हो—उसी का नाम सच्चा धर्म है।

वास्तविकता क्या है—वह पहले जानना पड़ेगी। जिसप्रकार अनंत जीव स्वतंत्र अस्तित्व से सिद्ध पदार्थ है, उसी प्रकार सर्व पुद्गलद्रव्य भी हैं। एक पुद्गलपरमाणु एकसमय में जिसप्रकार की अवस्था धारण करे, वह अन्य पुद्गल के समान नहीं होती; इसलिये पुद्गलद्रव्य की—प्रत्येक परमाणु की प्रतिसमय अन्यअन्यता जानना चाहिये। देखो, स्वयंसिद्धरूप से प्रत्येक पदार्थ स्वयं से ही है, पर से नहीं है,—इसका नाम सर्वज्ञ वीतराग कथित साम्यवाद है। बाह्य में साम्यवाद की बातें करनेवाले देखें कि साम्यवाद कहाँ है?

अब, जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य एक क्षेत्रावगाहीरूप से अनादि काल से धातु-पाषाण की भाँति हैं; उसमें विशेष इतना कि जीवद्रव्य एक और पुद्गल परमाणुद्रव्य अनंतानंत, चलाचलरूप, आगमन-गमनरूप, अनंताकार अनंत प्रकार के परावर्तनस्वरूप-परिणमनरूप बंध-मुक्तिशक्ति सहित वर्तते हैं, वे सब अपने से ही उसप्रकार वर्तते हैं। वे जीव के द्वारा बंधन या मुक्त होते हैं, ऐसा नहीं है। बँधना=स्कंधरूप से संघातरूप से होना या अकेला भेद-संघातरूप होना अथवा जीव के साथ बंध-मुक्तिरूप से होना। उनकी प्रत्येक स्वतंत्र शक्ति है (अशुद्ध पर्याय में भी कर्ता, कर्म, करण आदि छहों कारक स्वतंत्र हैं। देखो, पंचास्तिकाय, गाथा ६२ की टीका)। जीव राग करे तो उसे (कर्म को) बँधना पड़ता है और रागरहित हो तो (कर्म को) छूटना पड़ता है-ऐसा नहीं है।

प्रश्न—एक परमाणु पृथक् था, वह स्थूल स्कंधरूप से आकार धारण करता है, उसमें स्पर्श और आकार स्थूलतारूप से एक हैं न?-तो उसके स्पर्शगुण की पर्याय और स्कंधरूप से स्थूल पर्याय एक हुई या नहीं?

उत्तर—नहीं; निश्चय से तो वहाँ भी पृथक्रूप से ही उसके प्रत्येक गुण की प्रत्येक पर्याय उसप्रकार वर्तती है। व्यवहार में स्थूलरूप से स्वयं हुआ है, वह अपनी शक्ति से ही हुआ है—पर की शक्ति से नहीं हुआ;—इसप्रकार जो जीव के साथ संसार अवस्था में कार्मणवर्गणारूप हुए हैं, वे सभी परमाणु स्वयं से ही बंधन-मुक्तिशक्ति से प्रवर्तमान हैं।

अब, जीवद्रव्य की अनंत अवस्थाएँ हैं, उनमें से तीन अवस्थाओं की मुख्यरूप से स्थापना की है। प्रथम गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक की अनंत अवस्थाओं में से (१) अशुद्ध-अवस्था-मिथ्यादृष्टि की; (२) शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, साधक की तथा (३) शुद्ध अवस्था तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती की है।—यह तीनों अवस्थाएँ संसारी जीवद्रव्य की जानना। संसारदशा से अतिक्रान्त भगवान सिद्धों को अनवस्थितरूप कहते हैं।

प्रश्न—परमाणु चलाचलरूप का अर्थ क्या?

उत्तर—जीव के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप होने आये, उसमें स्थिर होने की अपेक्षा से अचल और छूटने—जाने की अपेक्षा से चल है।

अब उन तीनों अवस्थाओं का वर्णन करते हैं—(१) जहाँ तक मिथ्यात्व दशा है, तब तक शुभाशुभ में एकताबुद्धिवान अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्ध व्यवहारी है, वह अनादिरूढ़, व्यवहार में विमूढ़ और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय में अनारूढ़ होने से आगमपद्धति में पुण्य में धर्म मानता है, पर को अपना मानता है

द्रव्य, वह निश्चय एकरूप है और उसकी पर्याय, सो व्यवहार है—यहाँ ऐसी शैली है। द्रव्य के साथ पर्याय अशुद्ध है, और उसमें आत्मजागृतिरूप अंशत: शुद्धता नहीं है; इसलिये उसका द्रव्य अशुद्ध निश्चयस्वरूप है। द्रव्य अपेक्षा से जीवद्रव्य सदा शुद्ध है-अशुद्ध नहीं है; तथापि उसे अशुद्ध कहना, सो व्यवहार कथन है।

अनादिकाल में एकेन्द्रिय से लेकर जैनमत में महाव्रतधारी नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु होकर नववें ग्रैवेयक तक गया, तथापि उस मिथ्यादृष्टि के अकेला अशुद्ध व्यवहार है। उसकी दृष्टि मात्र राग पर है और उसी में एकता का अनुभव करता है।

(२) सम्यग्दृष्टि होने पर मात्र चतुर्थ गुणस्थान से बारहवें तक मिश्र-निश्चयात्मक जीवद्रव्य मिश्रव्यवहारी है। अनादि से राग और ज्ञायक की एकताबुद्धि थी; फिर भेदज्ञान द्वारा ग्रन्थिभेद होने से ऐसा भासित हुआ कि—मैं सत्यस्वरूप शुद्ध ज्ञायकमूर्ति हूँ, पराश्रद्धारहित-रागरहित हूँ और निरंतर अखंड ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप से ही परिणमन प्रारम्भ हो गया। चारित्र में अंशत: स्वरूपाचरणचारित्र होने पर भी अंशत: सरागता (बाधकभाव) और अंशत: वीतरागता (साधकभाव)—ऐसा मिश्रभाव चतुर्थ से बारहवें गुणस्थान तक है; वह साधकदशा का काल असंख्य समय है; उसमें से कोई मिथ्यादृष्टि हो जाये तो वह मिश्र व्यवहारी नहीं रहा।

सादि मिथ्यादृष्टिरूप रहने का उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गलपरावर्तन, वह अनंत समय है। द्रव्य वह त्रिकाल शुद्ध निश्चय है, उसकी पर्याय में मिश्र–अंशतः शुद्धाशुद्धपना है, उसमें स्थित जीव, सो मिश्र व्यवहारी है।

अंशतः शुद्धता, सो संवर–निर्जरा, और उसी पर्याय में अंशतः अशुद्धता, सो आस्रव और बंध—इसप्रकार मिश्रव्यवहारी है।

मिथ्यादृष्टि तो पर्याय है और सामान्य द्रव्य तो शुद्ध है—निश्चय है, उसे अशुद्ध क्यों कहा गया है कि—वह जीव अकेले राग, द्वेष, अज्ञान में एकत्वबुद्धि द्वारा शुभाशुभराग में ही रुका है। हजारों शास्त्र पढ़ डाले, महाव्रतों का पालन किया, तथापि राग का कर्ता–भोक्ता और स्वामी रहकर अशुद्धता का ही अनुभव करता है; पर्याय में अशुद्धरूप से ही परिणमित होता है, इसलिये वह जीव द्रव्य अशुद्ध निश्चयात्मक है।

(३) तेरह–चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञानी शुद्ध निश्चयात्मक–शुद्धव्यवहारी है; वहाँ भी सर्व गुणों का चारित्र परमयथाख्यात नहीं हुआ है; इसलिये कर्ता, भोक्ता, वैभाविक–शक्ति, चार प्रतिजीव गुण आदि कितने ही गुणों की पर्याय अशुद्ध है। द्रव्य निश्चय है और क्षायिकभाव से नव–केवललब्धि, अनंत चतुष्टय आदि पर्यायें शुद्ध हो गई हैं; किंतु अमुक गुणों की पर्याय में अशुद्धता है, इसलिये व्यवहारी है—इसप्रकार केवलज्ञानी शुद्धव्यवहारी है।

निश्चय, सो द्रव्य का स्वरूप और व्यवहार, सो संसार अवस्थित भाव, उसका वर्णन करते हैं—यहाँ द्रव्य, सो निश्चय और पर्यायें सब व्यवहार है; उसमें निर्मल चेतनाविलासरूप स्वाश्रित निश्चयसम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को व्यवहार कहा है; केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। मिथ्यादृष्टि जीव अपने स्वरूप को नहीं जानता, इसलिये पर स्वरूप में मग्न होकर पर को अपना मानता है। मेरी इच्छानुसार परद्रव्य की उत्पत्ति, उसमें परिवर्तन तथा उसकी स्थिति होती है—ऐसा मानता रहता है; इसलिये पराश्रय के, राग के प्रेम में रुका हुआ है। स्वयं नित्य, अरागी, ज्ञाता, चिदानंदप्रभु साक्षीरूप है—अकेला ज्ञायक मात्र हूँ; मुझे निमित्त और राग के अवलंबन की आवश्यकता नहीं है, मैं उसका अकर्ता हूँ—इस बात का अज्ञानी निर्धार नहीं करता। मिथ्यात्व, पुण्य–पाप आस्रवतत्त्व है; अनात्मा है—अजाग्रतभाव है, चैतन्य की जागृति का नाशक है; इसलिये परस्वरूप है—स्व–स्वरूप नहीं है। इसप्रकार भावभासनरूप भेदज्ञान करता नहीं, इसलिये वह परस्वरूप में लीन होता है। देह की और राग की क्रिया का कर्ता होता है और उसमें अपना अस्तित्व

मानता है। शुभराग हो तो मुझे निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र होंगे—ऐसा मानता है; इसलिये वह रागादि आस्रव की क्रिया को अपना कर्तव्य मानता है; इसप्रकार मात्र अशुद्धभावरूप से परिणमित होता है, इसलिये वह जीव अशुद्ध व्यवहारी है; वह महाव्रतों का शुद्ध पालन करे, तथापि अशुद्ध ही है। पर के कार्य मैंने किये, मैं हूँ तो उसमें कार्य होता है, जीव इच्छा करे तो वाणी उत्पन्न हो और शरीर क्रियावान हो मैं दूसरे को समझा सकता हूँ, मैं वाणी बोल सकता हूँ, मैं मौन रह सकता हूँ, जीव असद्भूतव्यवहारनय से अन्न-जल का ग्रहण-त्याग कर सकता है—इसप्रकार अपने को पर का ग्रहण-त्याग करनेवाला मानता है, पर में अनपनत्व मानता है, वह जीव ज्ञातापने का विरोधी तथा पर के कार्य का स्वामी बननेवाला मिथ्यादृष्टि ही है।

सम्यग्दृष्टि जीव तो निर्मल भेदभ्यास की प्रवीणता से अपना स्वरूप का परोक्ष प्रमाण से (निःसंदेहरूप से) अनुभव करता है। मति-श्रुतज्ञान सामान्यरूप से परोक्ष हैं, किंतु स्वानुभवकाल में उन्हें प्रत्यक्ष कहा है—ऐसे स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा धर्मी जीव अपने अखंड चिन्मात्र स्वरूप को भलीभाँति जानता है, अनुभव करता है; परंतु परसत्ता और परस्वरूप के किसी कार्य को अपना नहीं मानता, अपने आधीन भी नहीं मानता।—मैं तो निरंतर ज्ञाता साक्षी ही हूँ—ऐसा निःशंकरूप से मानता है। योग द्वारा अर्थात् मन, वचन, काय की ओर की बाह्य वृत्ति को छोड़कर अंतरोन्मुखता द्वारा अपने स्वरूप में ध्यान, विचार, एकाग्रता, चिंतवन आदि करता है। उस समय बुद्धिपूर्वक विचार है किंतु उसमें जितना अंश स्वाश्रित एकत्व का बल है, उसके द्वारा अपने में शुद्धता का कार्य करता है, परसत्ता का कार्य उसके काल में उसी के कारण होता है, मैं उसे नहीं कर सकता; मैं निमित्त हूँ इसलिये उसमें कार्य होता है—ऐसा नहीं मानता। भूमिकानुसार अशुद्धभाव (शुभाशुभभाव) होते हैं; किंतु उनका कर्ता-भोक्ता और स्वामी होता ही नहीं, रागादि को करनेयोग्य नहीं मानता किंतु स्वरूप में ध्यान, विचार, एकाग्रता आदि में अंशतः शुद्धिरूप कार्य करता है। वह कार्य करते हुए उसे मिश्र-व्यवहारी कहा जाता है।

अहो!! तेरी प्रभुता, स्वाधीनता और प्रचंड शक्तिरूप शूरवीरता

पात्रता हो तो प्रभुता प्रगट होती है, वह कहीं तुझसे दूर नहीं है। तू ही पात्रता और प्रभुता सहित है—रहित नहीं है।

प्रभु! तेरी महत्ता के गीत गाये जा रहे हैं। अनादि से तेरी ऐसी मान्यता है कि पर से मेरा भला होगा, वह मिथ्यात्वरूपी भ्रम तुणे बंधन है, दुःखदाता है। वीतरागी कहते हैं कि तेरी अनंत शक्तियाँ तेरे लिये स्वतंत्र हैं, किंतु पराधीन होकर ऐसा मानता है कि मैं किसी को दे दूँ, कोई मुझे सहायक हो, किंतु यह मेरी भूल है। तीन काल–तीन लोक में किसी का स्वरूप पराधीन नहीं है। तू जागृत होकर देख! अब विपरीत मान्यता को छोड़ दे। भव नहीं चाहिये, भव भ्रमण का कारण भी नहीं चाहिये। तेरी मुक्तदशा की प्रभुता कैसे प्रगट होती है, उसकी कथा चलती है। जैसे बालक को सुलाने के लिये उसकी माता प्रशंसारूप गाने गाती है, उसी प्रकार यहाँ जागृत करने के लिये सच्चे गाने गाये जा रहे हैं। जिसप्रकार युद्ध के नगारे बजते ही क्षत्रिय का शौर्य उछल पड़ता है, ऐसी उसमें योग्यता होती है, उसीप्रकार मुक्त होने का अपूर्व नाद सुनकर, अंतर से उछलकर हाँ कहे कि अहो! मेरी महानता के गीत गाये जा रहे हैं; वर्तमान में भी मैं अनंत गुण संपन्न पूर्ण भगवान हूँ, मुक्त हूँ, भगवान होने की शक्ति तुझमें है, उसी शक्ति के बल से अनंत जीव भगवान हुए हैं। जिस शक्ति को तीर्थंकर प्रभु ने प्रगट किया, वह तू भी प्रगट कर सकता है।

(समयसार, प्रवचन भाग १ में से)

सैद्धांतिक चर्चा

[लेखांक - १३]

३९८—प्रश्न ७ (अ) कार्य होने में निमित्त कारण प्रयोजनीय है या नहीं ?

(ब) संसारी जीव की आध्यात्मिक प्रवृत्ति में (शुभ तथा अशुभ में) अंतरंग बहिरंग निमित्त कारण कार्यकारी है या नहीं ?

उत्तर:—इस प्रश्न का उत्तर देने से पहिले उपादान और निमित्त का स्वरूप जानने की अति आवश्यकता है, वह निम्न अनुसार है।

(१) सत् स्वरूप वस्तु स्वतः सिद्ध एवं स्व-सहाय है।

पंचाध्यायी अध्याय १, गाथा ८ में लिखा है कि—

''तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धं।
तस्मादनादिनिधनं, स्वसहायं निर्विकल्पं च॥''

अर्थात् वस्तु का सामान्य लक्षण 'सत्' होने से 'सत् मात्र' तथा 'स्वतः सिद्ध' है, इसलिये वो 'अनादिनिधन' एवं 'स्व-सहाय' और 'निर्विकल्प' है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी वस्तु का कभी भी नाश नहीं होता तथा 'स्वसहाय' यानि कोई दूसरे की सहायता, आधार एवं हेतुपने आदि की भी अपेक्षा नहीं रखता। इसलिए हर एक वस्तु यानी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल ये छहों वस्तुएँ सत् स्वरूप, स्वतः सिद्ध हैं, इनका कभी भी, कोई भी नाश नहीं कर सकता और उत्पन्न भी नहीं कर सकता। इसलिये कोई भी इस छहः द्रव्यमय लोक का कर्ता (उत्पन्न करनेवाला) एवं हर्ता (नाश करनेवाला) नहीं हो सकता, इसीप्रकार हर एक वस्तु अपने कायम बने रहने में किसी की भी सहायता आदि की भी अपेक्षा नहीं रखती, इससे यह सारांश निकला कि भूतार्थ नय से छहों द्रव्यों में से कोई भी द्रव्य कभी भी किसी भी द्रव्य का किसी भी प्रकार से कर्ताहर्ता नहीं है तथा कोई भी द्रव्य किसी भी द्रव्य को किसी प्रकार की सहायता आदि भी नहीं दे सकता।'**निमित्तमात्र अन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्**' (इष्टोपदेश, गाथा ३५)

(२) गुण पर्यायवान् द्रव्य है।

'गुण पर्ययवद् द्रव्यं' सूत्र के अनुसार गुण और पर्यायवाला द्रव्य होता है, यानि अनंत गुणों का पिण्ड, सो ही द्रव्य है। द्रव्य के पूरे भाग में और उसकी सर्व अवस्थाओं में जो रहे, वे गुण हैं। और हर एक गुण की समय-समय में नई-नई होनेवाली अवस्थाएँ, वे पर्यायें हैं। इसप्रकार कहने में तीन प्रकार आने पर भी ये तीनों अभेदपने से एक ही हैं। जैसे अनादि-अनंत पर्यायें (भूत में हो चुकी, भविष्य में होनेवाली तथा वर्तमान वर्तती अवस्थायें) का भंडार हर एक गुण है, और ऐसे अनंत गुणों का पिण्ड, सो ही द्रव्य है। इसप्रकार द्रव्य का परिणमन, सो ही गुण का परिणमन और गुण का परिणमन, सो ही द्रव्य का परिणमन, इसमें भेद कहने में आने पर भी यथार्थतः भेद नहीं है। इसप्रकार हर एक द्रव्य समय-समय अपनी भावी अवस्थाओं को वर्तमानरूप करता हुआ तथा वर्तमान को भूत में मिलाता हुआ स्वयं पलटते-पलटते अनादि-अनंत सत्‌रूप कायम रहता है। 'द्रव्य पलटता है', ऐसा कहने में ही अनंत गुण समय-समय पलटते हैं, यह आ ही जाता है।

(३) सत् का सत्‌पना उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से है।

इस प्रकार हर एक वस्तु यथार्थतया एक समय में ही पूर्व अवस्था को त्याग (व्यय) कर, उत्तर अवस्था को प्राप्त (उत्पाद) करती हुई वस्तुपने से त्रिकाल (ध्रुव) रहती है, यथा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' अर्थात् 'सत्' उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक ही है, जैसे सुवर्ण जिसमें कुछ चाँदी मिली हुई हो, ऐसे सुवर्ण के पीनेपन को लीजिए तो मिश्रित अवस्था में उसका पीला गुण फीका था, जब सुवर्णकार ने उसको अग्नि में तपाया तो क्रमशः उस पीले गुण की फीकापनवाली अवस्था का अभाव होकर क्रमशः पीले गुण की वृद्धिवाली अवस्था का उत्पाद होता गया जो अन्त में १०० टंच के पूर्ण पीलेपन की अवस्था को प्राप्त हो गया। अब दृष्टांत के किसी भी एक समय को लीजिये तो एक ही समय में जितने अंश चाँदी की सफेदीपन का अभाव हो रहा है, उस ही एक समय में उतने ही अंश में पीलेपन की वृद्धि हो रही है और उस ही एक समय में पीले गुणवाला सुवर्ण तो वहीं मौजूद है जो पहिले था। इस ही प्रकार निश्चयनय से हर एक वस्तु (द्रव्य) अपने हर एक गुण सहित, एक-एक समय में पूर्व अवस्था का व्यय कर, उत्तर अवस्था को प्राप्त करती हुई वस्तुपने से त्रिकाल एकरूप कायम बनी रहती है। इसलिये सिद्ध हुआ कि सत्‌रूप वस्तु मात्र का स्वभाव ही हर समय-समय उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक परिणमनशील ही है। यही 'वस्तुस्वभाव' है।

३९९—(४) प्रश्न—वस्तु परिणमनशील क्यों है ?

उत्तर—स्थूलदृष्टि से भी देखो तो साक्षात् यही दिखने में आता है। जैसे-कोई मनुष्य कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी क्रोधित होता है, कभी हर्षित होता है, कुछ समय पहिले बालक था, वर्तमान में युवा है—आदि-आदि अवस्थाओं को पलटते हुए भी वह मनुष्य तो वही रहता है। अवस्थाएँ पलटती हैं, पर मनुष्य नवीन नहीं हो जाता है; इसलिए युक्ति, आगम, अनुमान एवं प्रत्यक्ष प्रमाण से वस्तु की उपरोक्त प्रकार से ही सिद्धि होती है, अन्यथा हो ही नहीं सकती। यह त्रैकालिक नियम है कि 'जो है' उसका कभी नाश नहीं हो सकता और 'जो नहीं है' उसकी कभी उत्पत्ति नहीं हो सकती। मात्र जो है, वही अनेक-अनेक अवस्थाओं में पलटता रहता है।

४०० (५) प्रश्न—वस्तु परिणमनशील तो है पर उसका उत्पाद, व्यय पर की सहायता की अपेक्षा तो रखता है न ?

उत्तर—नहीं, यह मान्यता मिथ्या है, क्योंकि वस्तु हर समय अपने वर्तमान में ही रहती है (अर्थात् हर समय कोई न कोई अवस्था (पर्याय) में ही वस्तु पाई जाती है,) इसलिए वस्तु की कोई भी अवस्था यदि 'पर सहाय' एवं 'परत: सिद्ध' मानी जावे तो वस्तु त्रिकाल में भी 'स्व-सहाय' एवं 'स्वत: सिद्ध' नहीं रह सकती; इसलिए वस्तु की हर एक अवस्था 'स्वत: सिद्ध' एवं 'स्व-सहाय' है।

श्री पंचाध्यायी अध्याय १, गाथा ८९ में लिखा है कि—

वस्त्वसित स्वतः सिद्धं यथा तथा तत्स्वतश्च परिणामि।
तस्मादुत्पादस्थितिभंगमयं तत् सदेतदिह नियमात्॥

अर्थः—जैसे वस्तु 'स्वत:सिद्ध' है, वैसे ही वह 'स्वतः परिणमनशील' भी है, इसलिये यहाँ पर यह सत् नियम से उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यस्वरूप है। इसप्रकार किसी भी वस्तु की कोई भी अवस्था, किसी भी समय, पर के द्वारा नहीं की जा सकती, वस्तु स्वत: परिणमनशील होने से अपनी पर्याय यानी अपने हर एक गुण की वर्तमान (अवस्था) का वह स्वयं ही सृष्टा (रचयिता) है।

प्रत्येक द्रव्य यानि वस्तु में एक अगुरुलघु नाम का गुण (स्वभाव) है, जिसके निमित्त से (१) किसी भी द्रव्य कोई अन्य द्रव्य में नहीं मिल सकता, (२) उसी द्रव्य के अनंत गुण आपस में एक दूसरे से नहीं मिल जाते, (३) कोई एक गुण की कोई अवस्था कोई अन्य गुण की कोई अवसथा के साथ भी नहीं मिल जाती, ऐसी हालत में अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य की पर्याय को कब और कैसे कर सकता है, क्योंकि सभी द्रव्यों में ही अगुरुलघुगुण है।

इसलिये सिद्ध हुआ कि वस्तु एवं उसका समय-समय का परिणमन 'स्वत:सिद्ध' एवं 'स्वसहाय' होने से हर एक द्रव्य स्वतंत्ररूप से हर समय अपने-अपने नियत काल में जो-जो अवस्थाओंरूप परिणमित होता है, उसी रूप से क्रमबद्ध परिणमन करता ही रहता है।

श्री प्रवचनसार गाथा ९९, पृष्ठ १२६ लाइन तीसरी चौथी में लिखा है कि '**समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरेषूत्तरोत्तर परिणामाना मुदयनात्पूर्वपूर्वपरिणामा-नामनुदयनात्**××'

अर्थ:—अपने-अपने अवसरों में प्रकाशते (प्रगटते) समस्त परिणामों में, पीछे-पीछे अवसरों में पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते होने से और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते होने से....'

यथार्थनय से द्रव्य अपने परिणमन में किसी भी क्षेत्र, काल, संयोग, निमित्त आदि की अपेक्षा नहीं रखता, विशेष क्या? किसी एक द्रव्य का कोई एक गुण भी अन्य गुण के परिणमन की अपेक्षा नहीं रखता, यही यथार्थ वस्तु का स्वरूप है।

४०१ (६) प्रश्न—वस्तु का धर्म सापेक्ष है, आप निरपेक्ष कैसे कहते हो?

उत्तर—हम वस्तु को स्व-अपेक्षा से सापेक्ष ही सिद्ध करते हैं; वस्तु 'स्वसहाय' है—ऐसा कहने में ही यह सिद्ध हो गया कि वस्तु 'परसहाय' नहीं है, और जब यह कहा कि 'परसहाय नहीं है' तो सहज ही यह सिद्ध हो गया कि 'पर भी कोई वस्तु अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है' अगर आकाश में पुष्प के समान पर कोई वस्तु ही नहीं हो तो 'पर सहाय नहीं है' यह विकल्प भी उत्पन्न नहीं होता। इसलिये वस्तुधर्म सापेक्ष है, क्योंकि किसी एक की अस्ति सिद्ध करने से ही अन्य सबसे नास्ति की अपेक्षा आ ही जाती है, यह वस्तु का स्वरूप है।

पर्याय का कारण स्वपर्याय ही है।

४०२ (७) प्रश्न—जब वस्तु स्वतः परिणमनशील है तो उसकी समय-समय की पर्याय स्वतः सिद्ध एवं स्वसहाय होने से उसके कारण कार्यपना कुछ नहीं रहा?

उत्तर—यथार्थतया तो वह पर्याय स्वयं ही स्वयं का कारण है और स्वयं ही स्वयं का कार्य है। शुद्धि की अपेक्षा भी ली जावे तो भी उसी समय की पर्याय ही यथार्थतया स्वयं उस पर्याय की शुद्धि का कारण है। जैसे किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को जिस समय सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ तो उस समय के पहले समय की पर्याय में तो मिथ्यादर्शन था, वह पर्याय सम्यग्दर्शन का कारण हो

नहीं सकती, अगर द्रव्य-गुण को कारण कहे तो द्रव्य, गुण तो पूर्व मिथ्यात्व अवस्था में भी था तथा वर्तमान सम्यक्त्व अवस्था में भी द्रव्य-गुण तो त्रिकाल एक रूप है ही, इसलिए वे द्रव्य-गुण भी इसके कारण नहीं कहे जा सकते, इसलिये सिद्ध हुआ कि उस समय की (पर्याय की) उसरूप होने की योग्यता ही स्वयं, स्वयं के उसरूप परिणमन का कारण है। वर्तमान सम्यक्त्ववाली पर्याय का पूर्व की पर्याय में तो 'प्रागभाव' है, भविष्य की पर्याय में 'प्रध्वंसाभाव' है, अतः जिनमें जिसका अभाव है, वह इसकी कारण कैसे हो सकती है? कोई कहे कि अन्य निमित्तरूप परद्रव्य इस पर्याय की शुद्धि का कारण है तो परद्रव्य की पर्याय का तो इस पर्याय में 'अत्यंताभाव' है। जिसका 'अत्यंत ही अभाव' हो, वह अभाववाली वस्तु उसका कारण कैसे कही जा सकती है?

इसीप्रकार किसी एक पुद्गल परमाणु के परिणमन को लीजिए—जो पहिले समय तो अनंतवें भाग हरा था और दूसरे समय अनंतगुणा लालरूप परिणमा तो उसमें अगर पूर्व पर्याय को कारण कहो तो हरा रंग लाल रंग का कारण कैसे हो? अगर द्रव्य-गुण को कारण कहो तो वे एकरूप थे, अगर निमित्तरूप अन्य द्रव्य को कारण कहो तो उसका इसमें 'अत्यंताभाव' है, अगर अन्य पुद्गल स्कन्ध को कारण कहो तो उसकी पर्याय का इसकी पर्याय में 'अन्योन्याभाव' है, इसलिये सिद्ध होता है कि यथार्थतया उस पर्याय का कारण उस पर्याय की उस समय के उसरूप परिणमन होने की योग्यता ही है।

४०३ (८) प्रश्न—कारण को कारण कब कहा जा सकता है?

उत्तर—यथार्थ में कारण को कारण तब ही कहा जा सकता है जबकि नियम से कार्य प्रगट हो।

श्री परमात्मप्रकाश अध्याय २, गाथा १४ की टीका में लिखा है कि '**अत्राह शिष्यः। निश्चय मोक्षमार्गो निर्विकल्पः तत्काले सविकल्प मोक्षमार्गो नास्ति कथं साधको भवतीति? अत्र परिहारमाह। भूत नैगमनयेन परंपरया भवतीति।**'

अर्थ—शिष्य पूछता है—निश्चयमोक्षमार्ग निर्विकल्प है, उस काल में सविकलप मोक्षमार्ग नहीं है, फिर भी वह साधक कैसे होता है। उसके उत्तर में कहते हैं कि भूतनैगमनय से परंपरा (साधक) होता है, अर्थात् उस काल अभाव होने पर भी पूर्व में जो सविकल्पदशा थी, उस पर भूतनैगमनय से साधकपने का उपचार करने में आता है। अगर कार्य प्रगट नहीं होवे तो किसको किसका कारण कहा जाए; इसलिये जिस पर्याय में कार्य प्रगट हो रहा है, उस कार्य का यथार्थ

कारण नियम से उस पर्याय की उसरूप परिणमन होने की योग्यता ही हो सकती है। इसलिए कार्य के समय, अन्य परद्रव्यों की वर्तमान पर्याय में से जो भाव हो (कार्य प्रगट होते समय जिसका उचित सन्निधिरूप सद्भव हो) उस पर निमित्त कारणपने का, तथा शेष परद्रव्यों की वर्तमान पर्यायों पर अभावपनेरूप कारणपने का उपचार किया जाता है।

इसप्रकार एक समय की पर्यायरूप कार्य प्रगट होने पर यथार्थ (निश्चय) कारण तो उस पर्याय की उसरूप परिणमने की उस समय की योग्यता ही है,

देखिये—चिद्विलास स्व० शाह पंडित दीपचंदजी काशलीवाल कृत पृष्ठ ८९ में लिखा है कि '**पर्याय का कारण पर्याय ही है। पर्याय की सत्ता गुण बिना ही पर्यायकों कारण है, पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्याय को कारण है। पर्याय को वीर्य पर्याय कौ कारण है। पर्याय का प्रदेशत्व पर्याय कौ कारण है, अथवा उत्पाद, व्यय कारण है, काहें तैं? उत्पाद, व्ययसौं पर्याय जानी परै है, तातैं ये पर्याय के कारण हैं, पर्याय कार्य है। ऐसे कारण कार्य का भेद है, सो वस्तु का रस सर्वस्वकारण-कार्य ही है।**'

फिर व्यवहार से उस ही समय उस ही द्रव्य में परिणमनेवाले अनंत गुणों की वर्तमान अवस्थाओं पर अन्य अनंतानंत परद्रव्यों की वर्तमान पर्यायों पर अनेक अपेक्षाओं को लेकर कारणपने का उपचार किया जाता है, इस ही से अनंतानंत सप्तभंगी सधती है। कारणों में उपचारपना कैसा है? दृष्टांत—जैसे मिट्टीरूप द्रव्य अपनी ढ़ेले (पिण्ड) रूप अवस्था को छोड़कर घटरूप पर्याय को प्राप्त करना शुरु करता है, संयोग की ओर देखनेवाली स्थूल दृष्टि को छोड़कर उसके समय-समय का स्वभाव का विचार करो तो उस मिट्टी की समय-समय की पर्याय जो घटपने को प्राप्त हो रही है। वह स्वयं ही उसका यथार्थ कारण (उपादान कारण) है, और समय-समय में पूर्व अवस्था के व्यय को उसका व्यवहार से कारण कहा जाता है, कारण कि यदि पूर्व अवस्था नाश को प्राप्त नहीं होती तो उस अवस्था की उत्पत्ति कैसे हो सकती? इस अपेक्षा कारणपने का उपचार किया जाता है।

इसीप्रकार अन्य द्रव्यों में लो तो, चक्र के बीच के हिस्से के पुद्गल स्कंधों जिन पर मिट्टी रखकर घटाकार बनायी जाती है—उस समय उनकी वर्तमान पर्यायों पर निमित्त कारणपने का उपचार किया जाता है। उन परमाणुओं के निमित्तपने का उपचार चक्र के परमाणुओं की वर्तमान पर्यायों पर और चक्र के परमाणुओं के निमित्तपने का उपचार दंड के परमाणुओं की वर्तमान पर्यायों

पर तथा उनके कारणपने का उपचार कुंभकार के अंगुलियों के परमाणुओं की वर्तमान पर्यायों पर तथा उनके कारणपने (निमित्तपने) का उपचार उस कुंभकार की वर्तमान में घड़ा करने की इच्छारूप राग की पर्याय पर उपचार करने में आता है। जिस समय उस मिट्टी को चक्र के बीच के पुद्‌गल परमाणुओं की अवस्थाएँ भावरूप निमित्त है, उसी समय उसको अन्य समस्त द्रव्यों की उस समय की पर्यायें अभावरूप निमित्त है।

इसप्रकार उपरोक्त कारण कार्य की उपचार श्रृंखला इतनी लम्बी होती हुई भी एक ही समय में है। इस उपचार श्रृंखला के कथन में समय लगता है, लेकिन जिस एक समय की पर्याय में जो कार्य प्रगट हुआ है, उसी समय उपरोक्त सभी द्रव्यों की अनंतगुण की अनंत पर्यायें एक ही समय में परिणमन कर रही हैं, कुछ समय भेद नहीं है।

४०४ (९)—कोई भी पर्याय किसी से भी प्रभावित नहीं होती।

कोई भी द्रव्य की पर्याय कोई दूसरे द्रव्य के प्रभाव, प्रेरणा, सहायता आदि से नहीं परिणम रही है। अगर कोई प्रकार की भी कुछ भी सहायता आदि मानो तो कारण कार्य में समय भेद भी मानना ही होगा, तथा जिस पर्याय का अस्तित्व ही नहीं हो, वह किस पर और कैसे प्रभाव डाल सकती है, तथा उस पर प्रभाव पड़ भी कैसे सकता है। इसलिए किसी पर्याय पर किसी पर्याय का प्रभाव आदि मानना प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से सर्वथा असत्यार्थ एवं वस्तु की पराधीन मान्यतावाला होने से वह मानना सर्वथा मिथ्या है।

उपादानरूप पर्याय जिस समय कार्यरूप परिणत होती है, उसी समय अन्य परद्रव्यों की वर्तमान वर्तती हुई अवस्थाओं पर निमित्तपने का उपचार आता है।

देखिये, श्री प्रवचनसार गाथा १०२, पृष्ठ १३२ की संस्कृत टीका में लिखा है कि '**यथा कुलालदण्डचक्रचीवरारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एव वर्धमानस्य जन्मक्षणः स एव मृत्पिण्डस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य मृत्तिकात्वस्य स्थितिक्षणः।**'

अर्थः—जैसे कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी से आरोपित संस्कार की सन्निधि के सद्भाव में (उपस्थिति में) जो रामपात्र का जन्मक्षण होता है, वही मृत्तिका पिण्ड का नाशक्षण होता है और वही दोनों कोटि में रहे हुए मिट्टीपने का स्थितिक्षण है।'

अगर उपादान स्वयं कार्यरूप परिणत नहीं होता तो वे किसके निमित्त कहलाते ? जैसे मिट्टी ही अगर घटरूप परिणत नहीं होती तो चक्र, दण्ड, कुंभकार का हस्त तथा उसका राग आदि पर्यायें

किसके निमित्त कहलातीं। यथा आलाप पद्धति में लिखा है कि '**मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्त उपचारः प्रवर्तते।**' इस प्रकार जहाँ मुख्य यानि कार्य ही नहीं हो तो वहाँ किसका, किसमें, कैसे उपचार हो सकता है ? अर्थात् किसी का भी नहीं ऐसा जानना चाहिए।

(१०) निश्चयनय से रागादि भी जीव 'निरपेक्षपने' स्वयं करता है—

४०५—प्रश्न—निश्चयनय से रागादि भी जीव 'निरपेक्षपने' स्वयं करता है, इसप्रकार की मान्यता में तो जीव के विभाव-रागादिक को भी स्वाभाविक मानना पड़ेगा ?

उत्तर—सूत्रजी में रागादि औदयिकभाव को स्वतत्त्व कहा है, रागादिक जीव की ही पर्याय में होते है, इसलिये जीव ही अशुद्ध निश्चयनय से उनका कर्ता है, लेकिन वे जीव में हमेशा नहीं पाये जाते, इसलिये वे जीव के त्रिकाली स्वभाव नहीं हैं। फिर भी अगर उस एक समय के पर्याय के स्वभाव की अपेक्षा लो तो उस समय मात्र की पर्याय का स्वभाव ही रागादिरूप है। जयधवला, पृष्ठ ३१९ में लिखा है कि 'कषाय औदयिकभाव से होती है। यह नैगमादि चार नयों की अपेक्षा समझना चाहिये, शब्द आदि तीनों नयों की अपेक्षा तो कषाय पारिणामिकभाव से ही होती है, क्योंकि इन नयों में कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति होती है।'

उपरोक्त जयधवला के कथन से सिद्ध हुआ कि विकारी पर्याय भी जीव निरपेक्षरूप से समय-समय स्वयं करता है, कोई कर्म आदि परवस्तु उसको रागादि नहीं करा देते, जब यह स्वयं रागादिरूप परिणमता है तो उस समय उपस्थित कर्मादि पर उदयरूप निमित्तपने का उपचार आता है, और अगर यह विकाररूप नहीं परिणमे तो उन्हीं कर्मों पर निर्जरारूप निमित्तपने का उपचार किया जाता है। कुछ जीव का विकारी होना, नहीं होना कर्मादिक की पर्यायों के परिणमन को रोक नहीं सकता, इस ही विकारी पर्याय का, जब निमित्त की मुख्यता लेकर कथन किया जाता है तो उसको 'नैमित्तिक' कह देते हैं। और उपादान ही स्वयं परिणमा होने से इसी पर्याय को उपादान की मुख्यता से 'उपादेय' कहा जाता है।

४०६ (११) उपादान-निमित्त कारणपना एक समय का है।

एक समय की पर्याय ही उपादान कारण है और एक समय की पर की पर्याय को ही निमित्त कारणपना है। कोई यह माने कि मिट्टी हमेशा घटरूप होने के लिए उपादान कारण, निमित्त मिले तब घटरूप कार्य हो जाता है तो यह बात यथार्थ नहीं है। मिट्टी को उपादान मात्र स्वभाव की अपेक्षा कह दिया जाता है जो कि एकरूप है लेकिन यथार्थतया उपादान कारण तो समय-समय की मिट्टी की स्वतंत्र योग्यता ही है। जिस समय की जिसप्रकार के परिणमन की मिट्टी की योग्यता है, उसी

की यह उपादान कारण है और उस समय उसी कार्यरूप परिणमित होती है, अन्यरूप नहीं। उस परिणमन के समय उस ही परिणमन के अनुकूल परद्रव्य, स्वयं अपने परिणमन काल के अनुसार परिणमता हुआ उपस्थित रहता ही है। न तो उपादान की पर्याय के कारण निमित्त की पर्याय हुई है और न निमित्त के कारण उपादान की ही; लेकिन दोनों ही अपने परिणमन काल के अनुसार परिणमती हुई एक तो कार्यरूप होने की योग्यता लेकर, दूसरी निमित्तपने का उपचार रूप होने की योग्यता लेकर एक ही समय आ प्राप्त हुई है। इस ही प्रकार के स्वतंत्ररूप संबंध विशेष का नाम ही 'निमित्त नैमित्तिक संबंध' है। इस ही प्रकार की कोई अचिंत्य विशेषता है कि जिस समय उपादान कार्यरूप परिणमनेवाला होता है, उस समय उसके अनुकूल निमित्त विश्व में होता ही है, यह एक स्वतंत्र विश्व की व्यवस्था है।

(१२) दोनों कारणों को मानना यथार्थ कब है ?

४०७—प्रश्न—शास्त्रों में दो कारणों के होने पर कार्य की सिद्धि होनी कही है, आप निमित्त कारण का कार्य तो उपादान में कुछ भी नहीं मानते, तब एक ही कारण का मानना सिद्ध हुआ ?

उत्तर—नहीं, हम तो दोनों ही कारणों को मानते हैं; उपादान कारण को शास्त्र में अंतरंग कारण, निश्चय कारण, यथार्थ कारण कहा है, और निमित्त कारण को बहिरंगकारण, उपचार कारण, अयथार्थ कारण कहा है। इसलिए उपादान कारण तो स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है और निमित्त कारण तो बाहर ही लौटता है, उपादान में किंचित् भी कैसे भी प्रवेश नहीं करता, मात्र सन्निधि में सद्भाव मात्र रहता है।

श्री प्रवचनसारजी गाथा ९५, पृष्ठ ११४ में तीसरी-चौथी लाइन में लिखा है कि

'द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थं समुचित बहिरंग-
साधनसन्निधिसद्भावे विचित्रबहुतएवस्थानं ॥

अर्थ—जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की हुई है—ऐसा द्रव्य भी कि जो उचित बहिरंग साधनों की सन्निधि (निकटता-हाजरी) के सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत सी अवस्थाएँ करता है...'

इसलिए निमित्त का उपादान में कुछ भी, कैसे भी कार्य माना जावे तो दोनों ही कारणों का लोप हुआ, कारण कि दोनों का 'दोपना' ही नहीं रहा, इसलिए उपादान तो अंतरंग-निश्चय कारण है और निमित्त मात्र बहिरंग-उपचार कारण है। (क्रमशः)

बम्बई में पूज्य श्री कानजीस्वामी की ७५ वीं हीरक जयंती तथा पंचकल्याणक महोत्सव में सम्मिलित हुए विद्वानों का तारीख १९ तथा २० मई को सम्मेलन हुआ, उसमें जो दो प्रस्ताव पास हुए हैं, वे उन विद्वानों की सूची के साथ यहाँ दिये जाते हैं।

सम्मेलन में उपस्थित विद्वानों की सूची

१.	श्री पंडित	बंशीधरजी न्यायालंकार (ईसरी)
२.	''	जगन्मोहनलालजी सि० शास्त्री (कटनी)
३.	''	फूलचन्दजी सि० शास्त्री (वाराणसी)
४.	''	नाथूलालजी शास्त्री संहिता सूरि (इन्दौर)
५.	''	देवचंदजी साहित्याचार्य (सहारनपुर)
६.	''	अभयचंदजी वैद्य, दर्शनाचार्य, काव्यतीर्थ (विदिशा)
७.	''	हुकमचदंजी न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न (अशोकनगर)
८.	''	रतनचंदजी शास्त्री न्यायतीर्थ (विदिशा)
९.	''	फतहचंदजी जैन प्रतिष्ठाचार्य शास्त्री (जबलपुर)
१०.	''	भगवानदासजी न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ (रायपुर)
११.	''	श्रीरामजी जैन शास्त्री, बी.ए. रामगंज, खंडवा (म.प्र.)
१२.	''	गेंदालालजी शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य (बूँदी)
१३.	''	प्रकाशचंदजी शास्त्री हितैशी (दिल्ली)
१४.	''	ज्ञानचंदजी शास्त्री, साहित्यरत्न (जबलपुर)
१५.	''	चुन्नीलालजी शास्त्री, चंदेरी (म.प्र.)
१६.	''	कैलाशचंदजी जैन (बुलन्दशहर)
१७.	''	जुगलकिशोर जैन, एम.ए. साहित्यरत्न (कोटा, राज.)
१८.	''	धन्यकुमारजी जैन शास्त्री, एम.ए. दर्शनाचार्य (इन्दौर)
१९.	''	नेमीचंदजी पाटनी (जयपुर)
२०.	''	धन्नालालजी जैन (लश्कर)
२१.	''	यशपालजी जैन, न्यायतीर्थ बाहुबली (कोल्हापुर)

२२.	श्री डा०	विद्याचंद्रजी शहा (बम्बई)
२३.	श्री पंडित	खेमचंदजी जैन (सागर)
२४.	''	दरशथलालजी जैन, सिवनी (म.प्र.)
२५.	''	जे.बी. जैन, इंटर कालेज, (सहारनपुर)
२६.	''	भगवानदासजी न्याय–काव्यतीर्थ (रायपुर)
२७.	''	जमकलालजी शास्त्री (कुरावड़)

★

तारीख १९–४–६४

प्रस्ताव नं० १

बम्बई पंचकल्याणक महामहोत्सव पर एकत्रित दिगम्बर जैन विद्वानों का यह सम्मेलन वर्तमान समय में सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के सैद्धांतिक प्रवचनों को आधार बनाकर अखबारों तथा ट्रैक्टरों द्वारा व्यक्तिगत अनुचित आक्षेप तथा आरोपात्मक अनुचित शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिससे समाज का वातावरण दूषित हो रहा है, इसे समाज व धर्म के लिये घातक मानता है। सम्मेलन विद्वानों तथा समाज के नेताओं से अनुरोध करता है कि इस निन्द्य पद्धति को तत्काल बंद किया जाये तथा पारस्परिक धर्म वात्सल्यभाव से चर्चायें करें, ताकि धर्म की प्रभावना हो और समाज में सौहार्द बढ़े।

प्रस्तावक	:	श्री पंडित मुन्नालालजी समगौरया, सागर
समर्थक	:	श्री पंडित देवचंदजी साहित्याचार्य, सहारनपुर
		सर्व सम्मति से पास

★

तारीख – २०–५–६४

प्रस्ताव नं० २

श्री बम्बई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं श्री कानजीस्वामी की ७५ वीं हीरक जयन्ती के सुअवसर पर पधारे हुए विद्वानों द्वारा यह सम्मेलन दिगम्बर जैन परम्परा के परम श्रद्धालु एवं प्रवक्ता आध्यात्मिक सत्पुरुष आत्मार्थी श्री कानजी स्वामी के प्रति हार्दिक अभिनंदन एवं श्रद्धा व्यक्त करता है और कामना करता है कि श्री आदरणीय कानजीस्वामी अनेकांत सम्मत, आगमानुकूल प्रवचनों से जैनशासन की जो सेवा कर रहे हैं, उसे निरंतर बल मिले और जन कल्याण के हेतु उसको अधिकाधिक व्यापकता प्राप्त हो।

प्रस्तावक : श्री पंडित भगवानदासजी न्यायतीर्थ–काव्यतीर्थ, रायपुर

समर्थक : श्री पंडित अभयचंदजी जैन दर्शनाचार्य, विदिशा

सर्व सम्मति से पास

— प्रकाशचन्द शास्त्री 'हितैषी' दिल्ली

बम्बई नगरी में महामहोत्सव

तारीख ३–५–६४ श्री कानजी स्वामी यहाँ पधारे, भव्य स्वागत हुआ। दादर कहाननगर सोसायटी में नवनिर्मित समवसरण तथा जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा का असाधारण उत्सव हुआ। साथ में पूज्य गुरुदेव की ७५ वीं जन्म–जयंती का हीरक महोत्सव बनाने के लिये अनेक विध तैयारियाँ चल रही थीं, बाहर गाँव से १०–१२ हजार संख्या में मेहमान आये थे, सबके लिये भोजनादि की अच्छी व्यवस्था की गई थी, ३२ उपरांत पंडित–विद्वान तथा १८ करीब ब्रह्मचारी, दो क्षुल्लकजी महाराज थे, सब त्यागीगण तथा ३०० उपरान्त शुद्ध भोजनवालों को सम्मानपूर्वक भोजनादि की सब सुविधायें उत्तम शैली से दी गई थीं जिसमें भूलेश्वर दिगम्बर जैन मंदिर के व्यवस्थापकों का अच्छा सहयोग था, प्रतिष्ठाचार्य, संहितासूरि श्री पंडित नाथूलालजी शास्त्री (इंदौर) थे।

आजाद मैदान में बहुत विशाल नवनिर्मित महावीर नगर की अनुपम शोभा थी, भक्तों का उत्साह भी अनोखा था, मुख्य आकर्षण पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का था, दोनों समय हजारों की संख्या में आकर धर्म जिज्ञासुगण प्रवचन का शांतचित्त से लाभ लेते थे। मंडप के प्रवेश द्वार सुवर्णरंगी उन्नत शिखरों से सुशोभित थे।

वैशाख सुदी १ से प्रतिष्ठा महोत्सव का कार्यक्रम चालू हुआ था, प्रात:काल जिनेन्द्र भगवान रथयात्रा द्वारा प्रतिष्ठा मंडप में पधारे, झण्डारोहणविधि, समवसरण मंडलविधान पूजन, मंडप में पाँचों कल्याणक के मनोरम दृश्यों की आकर्षक रचना थी।

वैशाख सुदी दूज आई... मंगल बधाई लाई... देशभर में से आये हुए हजारों भक्तों ने हर्षोल्लासपूर्वक पूज्य स्वामीजी का हीरक जयंती महोत्सव मनाया (साल ७५वीं) आज छह दम्पति ने पूज्य स्वामीजी के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा अंगीकार की। सबेरे जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करके स्वामीजी मंडप में पधारे, इस समय तीर्थयात्रा संबंधी भव्य चित्रों की प्रदर्शनी का श्री पूरणचंदजी गोदीका द्वारा उद्घाटन हुआ।

जिनेन्द्रदेव के पूजन के बाद १८-२० हजार संख्या की सभा में एक घंटा तक पूज्य स्वामीजी ने अध्यात्म संदेश सुनाया, दिगम्बर जैन धर्म की महानता समझायी बाद अनेक महानुभावों ने तथा विद्वानों ने पूज्य कानजीस्वामी का परिचय-गुणानुवाद तथा श्रद्धांजलि द्वारा हर्ष प्रगट किया। बाहर गाँवों से व अफ्रीका, अमरीका आदि से भक्ति भरे अभिनंदन के सैकड़ों संदेश आये थे, दोपहर के प्रवचन के बाद भी जन्मजयंती का हर्षोल्लाास का कार्यक्रम चालू था, अनेक विद्वानों और मुमुक्षुओं के प्रसंगोचित भाषण हुए। रात्रि को भक्ति तथा बालाओं का धार्मिक संवाद था।

बैसाख सुदी ३ दोपहर को १८ हजार संख्या की भव्य सभा में माननीय राष्ट्रभक्त श्री ढेबरभाई की अध्यक्षता में माननीय राष्ट्रभक्त भारतसरकार के केन्द्रीय मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के सुहस्त से ८०० पृष्ठ का 'अभिनंदन ग्रंथ' पूज्य गुरुदेव को विनय सहित अर्पण किया और उन्होंने स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि तथा सत्समागम की महिमा प्रगट करते हुए भाषण किये जो ऑल इंडिया रेडियो द्वारा दो बार प्रसारित किये गये।

बैसाख सुदी ३ से ६ - मुक्तिकानयन, जलयात्रा, समवसरण-मंडलविधान, जिनेन्द्र कलशाभिषेक, मंगल कुम्भ, स्थापना-नांदीविधान, आचार्य अनुज्ञा, १२ इंद्र-इंद्राणियों की प्रतिष्ठा व भव्य जुलूस, यागमंडलविधान पूजा, गर्भकल्याण का भावप्रदर्शन, १६ स्वप्न, जिनमाताजी तथा

देवियों का सुंदर संवाद, जिनमंदिर वेदी कलश, ध्वजशुद्धि विधान, रात्रि को भजन भक्ति आदि कार्य हुए।

बैसाख सुदी ७ विधिनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान के जन्म कल्याणक के समय दो सच्चे हाथी आये थे, तीसरा ७ सूंडवाला विशाल ऐरावत हाथी जो चतुर कलकारों के द्वारा तैयार किया गया था, एक हाथी पर श्रीजी को सौधर्म इन्द्र द्वारा विराजमान करके मेरु पर्वत पर ले जाने का विराट जुलूस जिसमें २० हजार जनसंख्या होगी, अनेक रथ बैण्ड घोड़ा आदि विविधता सहित जुलूस के साथ श्री स्वामीजी भी चल रहे थे, अजमेर भजन मंडली का नृत्य भजन संगीत का आकर्षक कार्यक्रम था। भारत सरकार के इंडियन न्यूज रिव्यू द्वारा इस जुलूस की फिल्म ली गयी थी। दोपहर को स्वामीजी द्वारा प्रवचन, रात्रि को भक्ति भजन तथा विद्वानों की तत्त्वचर्चा हुई।

बैसाख सुदी ८ श्री पार्श्व प्रभु को वैराग्य, दीक्षार्थ वन गमन, दीक्षा ग्रहण, दीक्षा कल्याणक का पूजन, पूज्य स्वामीजी का वैराग्यमय प्रवचन बाद बाल ब्रह्मचारी श्री पंडित झमकलालजी ने स्वामीजी के समक्ष आजीवन ब्रह्मचार्य प्रतिज्ञा अंगीकार की। जनता की बेशुमार भीड़ थी। दोपहर को बालाओं द्वारा सती अंजना आदि का खास ज्ञान-वैराग्यमय संवाद, सभा में स्वामीजी का प्रवचन, बाद जिनेन्द्र भक्ति, रात्रि को भगवान पार्श्वनार्थ के पूर्व भव के १२ भवों के चित्रमय दृश्य दिखाये गये जो तादृश्य विवेक वैराग्य को बतलानेवाले थे, पंडित नाथूलालजी सुंदर ढंग से समझाते जाते थे। कमठ द्वारा पार्श्व प्रभु को मुनिदशा में किये गये उपसर्ग, धरणेन्द्र पद्मावति का दृश्य, भजन नृत्य भक्ति तथा श्री जगमोहनलालजी शास्त्री आदि के प्रवचन हुए।

बैसाख सुदी ९ स्वामीजी का प्रवचन हमेशा समयसार तथा पद्मनंदी पंचविशंतिका में से ऋषभजिन स्तोत्र के ऊपर चलता था, श्री पार्श्व प्रभु की आहारदान विधि तथा पूजा दोपहर को जिनेन्द्र प्रतिमाओं के ऊपर अंकन्यास विधि तथा अन्य क्रियाएँ। केवलज्ञान कल्याणक, समवसरण रचना, पूजन, स्वामीजी का प्रवचन। रात्रि को श्री पंडित फूलचंदजी शास्त्री, पंडित भगवानदासजी रायपुर, श्री पंडित प्रकाशचंदजी शास्त्री दिल्ली के प्रवचन।

बैसाख सुदी १० निर्वाण कल्याणक महोत्सव एवं इंद्रों द्वारा पूजन, स्वामीजी तथा श्री पंडित बंसीधरजी न्यायालंकार आदि के प्रवचन। रात्रि को अजमेर भजन मंडली का कार्यक्रम तथा विद्वत् सम्मेलन।

बैसाख सुदी ११-उपनगर दादर जिनमंदिर तथा समवसरणजी वेदी में जिनेन्द्र भगवंतों की

प्रतिष्ठा, चाँदी के समयसार—पंचास्तिकाय शास्त्र की स्थापना, शिखर पर सुवर्णकलश, ध्वजारोहण, मंदिरजी में भक्तिगान की धूम मच रही थी। महावीर नगर में रात्रि को पंडितजी के, भुजबलीजी शास्त्री मूडबद्री तथा श्री नाथूलालजी शास्त्री का प्रवचन। इन दिनों में तारीख १९-२० रात्रि को ११.०० बजे तक ३२ विद्वारों द्वारा एकत्र होकर सम्मेलन किया गया, तत्त्वचर्चायें चली थीं और दो प्रस्ताव रखे गये जो सर्वसम्मति से पास हुए। श्री पंडित प्रकाशचंद्रजी शास्त्री 'हितैषी' दिल्ली द्वारा जैनपत्रों में प्रकाशनार्थ भेजे गये हैं। सब मिलकर ४० विद्वान थे, उन्होंने श्री कानजीस्वामी द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित, आगमानुकूल अनेकांत सुसंगत उपदेश द्वारा उत्तम धर्म प्रचार हो रहा है, इस बात की स्पष्ट घोषणा की थी। इस महोत्सव में उत्तमधर्म प्रभावना हुई है, साधर्मी एकत्र होकर धार्मिक चर्चा करते हुए बहुत संख्या में नजर आते थे। इतनी बड़ी संख्या होने पर भी सबको बड़ी-बड़ी कॉलेज-होस्टलों में जगह मिल गई थी, भोजन की भी अच्छी व्यवस्था थी, संस्था के माननीय प्रमुख श्री मणिभाई, श्री नवनीतभाई उपप्रमुख तथा श्री चिमनभाई, श्री मुकुंदभाई, श्री गोदीकाजी, श्री महेंद्रकुमारजी सेठी आदि सैकड़ों बंधुओं के अथक उत्साह से यह उत्सव सम्पन्न हुआ। श्वेताम्बर जैन समाज का भी अच्छा सहयोग मिला। सभी को धन्यवाद।

—श्री चिमनलाल मोदी तथा ब्रह्मचारी गुलाबचंद

आध्यात्मिक-पद

(राग - विलावल)

सुमर सदा मन आतमराम,
स्वजन कुटुम्बी जन तूं पोषै तिनको होय सदैव गुलाम,
सो तौ हैं स्वारथ के साथी, अनंतकाल नहिं आवत काम ॥ सुमर० ॥१ ॥
जिमि मरीचिका में मृग भटकै, परत सो जब ग्रीषम अति धाम,
तैसे तूं भव भव मांही भटकै, धरत न इक छिनहू विश्राम ॥ सुमर० ॥२ ॥
करत न ग्लानि अब भोगन में धरत न वीतराग परिणाम,
फिरि किमि नरकमांहि दुःख सहसी जहाँ सुख लेश न आठों जाम ॥ सुमर० ॥३ ॥
तातैं आकुलता अब तजि के थिर ह्वै बैठो अपने धाम,
'भागचंद' वसि ज्ञान नगर में, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥ सुमर० ॥४ ॥

जैनदर्शन शिक्षणवर्ग

सदैव की भाँति इस वर्ष भी प्रौढ़ आयु के जैन बंधुओं के लिए मिती श्रावण सुदी ५ तारीख १२-८-६४ से जैनदर्शन शिक्षणवर्ग चलेगा। धर्म जिज्ञासुओं को परम उपकारी पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के दिगम्बर जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों के रहस्यमय प्रवचनों का भी लाभ मिलेगा। युवकवर्ग भी लाभ ले सकते हैं। आने की भावना हो वे पहले से सूचित करें।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म की वी.पी. छुड़ा लेवें

जिन ग्राहकों ने आत्मधर्म का वार्षिक मूल्य ३) रुपये अभी तक मनिआर्डर द्वारा नहीं भेजा है, उनके नाम आत्मधर्म पत्र शीघ्र ही वी.पी. से भेजा जा रहा है, कृपया वी.पी. पहुँचने पर उसे रुपये देकर ले लेवें। —प्रकाशक

नयी आवृत्ति छपकर तैयार है

श्री दिगम्बर जैन सेठी ग्रंथमाला की ओर से जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्रथम भाग व तृतीय भाग चतुर्थावृत्ति छपकर तैयार हो गया है। जिज्ञासुगण शीघ्र मंगवा लेवें। मूल्य प्रत्येक भाग के ६२ नये पैसे। डाकखर्च अलग।

पता — श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

अपूर्व अवसर

श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा सहित छपकर तैयार है, शीघ्र ही मँगवाइये।

आत्मप्रसिद्धि

४७ शक्तियों पर विस्तृत प्रवचन शीघ्र ही पूर्ण हो रहा है, प्रतीक्षा करें।

श्री प्रवचनसार (२ कलर में)

छप रहा है, प्रतीक्षा करें।

★ पोन्नूर यात्रा अंक ★

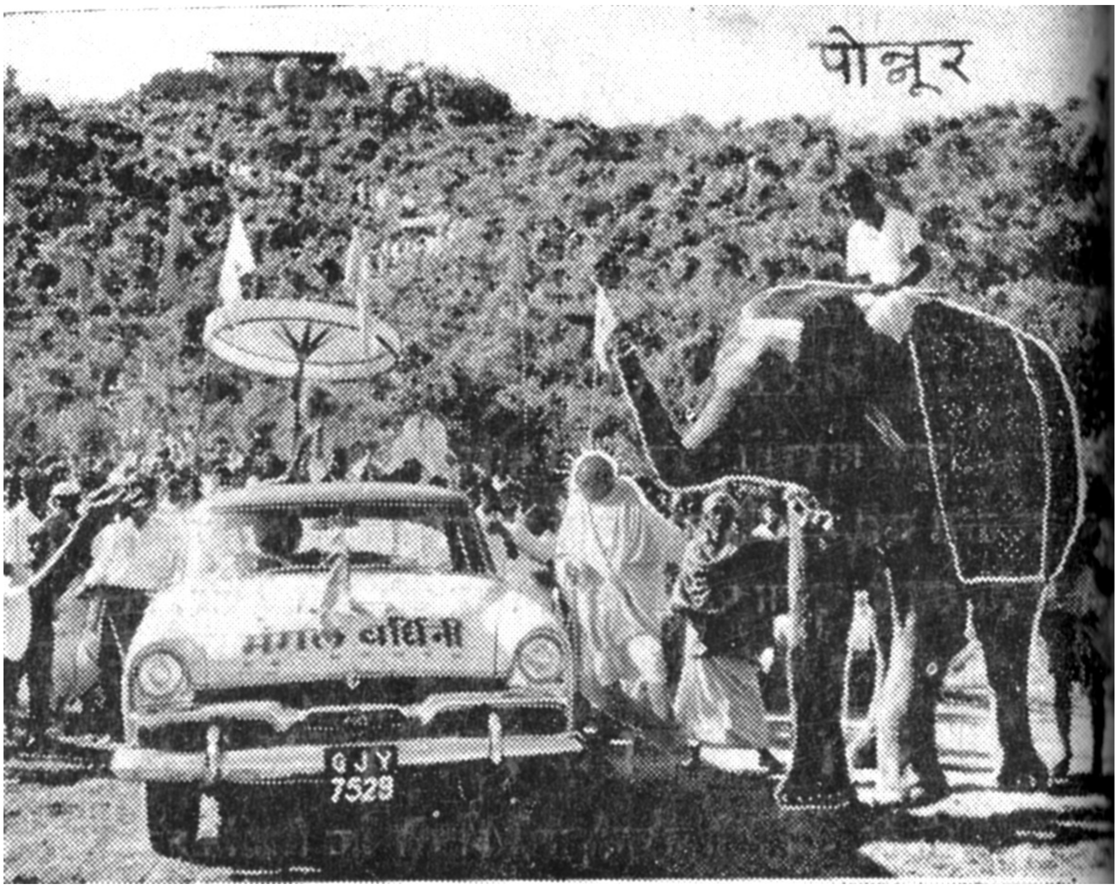

जिनेन्द्रों और दिगम्बर संतों के प्रति असाधारण भक्ति और अपूर्व उल्लास सहित पाँच हजार यात्रियों सहित श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पावन तीर्थधाम की ऐतिहासिक यात्रा करके नीचे आते समय श्री कानजी स्वामी के स्वागत का एक सुन्दर दृश्य (तारीख २६ जनवरी १९६४)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।